शोध दिशा

वर्ष 3 अंक 3 | जुलाई-सितंबर 2010 | 30 रुपए

संपादकीय कार्यालय
हिंदी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार, बिजनौर 246701 (उ॰प्र॰)
फ़ोन : 01342-263232, 09368141411
ई-मेल : giriraj3100@rediffmail.com
वैब साइट : www.hindisahityaniketan.com

क्षेत्रीय कार्यालय
दिल्ली एन॰सी॰आर॰
अनुभूति
सी-106, शिव कला
बी 9/11, सैक्टर 62, नोएडा
फ़ोन : 09952070700

हरियाणा
गीतिका गोयल
ए-801, पार्क व्यू सिटी-2
सोहना रोड, गुड़गाँव (हरियाणा)
फ़ोन : 0124-2218974, 09582845000

दक्षिण भारत
राहुल भटनागर
जी-202, दि ईस्ट सेंट्रल पार्क, लेंसर अपार्टमेंट
अल्कोट एवेन्यू रोड, ओल्ड महाबलीपुरम् रोड
शोलिंगनल्लूर, चेन्नई-600019
फ़ोन : 044-24508070, 09176670727

(सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।)

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

प्रबंध संपादक
डॉ॰ मीना अग्रवाल

अतिथि संपादक
इला प्रसाद

संयुक्त संपादक
मनोज अबोध
सत्यराज

कला संपादक
गीतिका गोयल/ अनुभूति

उपसंपादक
डॉ॰ अशोक कुमार

विधि परामर्शदाता
अनिलकुमार जैन, एडवोकेट

आर्थिक परामर्शदाता
ज्योतिकुमार अग्रवाल, सी॰ए॰

चित्रकार
डॉ॰ आर॰के॰ तोमर
देवेंद्र शर्मा
अतुलवर्धन

शुल्क
आजीवन शुल्क : ग्यारह सौ रुपए
वार्षिक शुल्क : सौ रुपए
एक प्रति : तीस रुपए
विदेश में : पंद्रह यू॰एस॰डॉलर (वार्षिक)

प्रकाशित सामग्री से संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद केवल बिजनौर स्थित न्यायालय के अधीन होंगे। शुल्क की राशि 'शोध दिशा' बिजनौर के नाम भेजें।

स्वत्वाधिकारी 'हिंदी साहित्य निकेतन' की ओर से स्वत्वाधिकारी, मुद्रक प्रकाशक डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल द्वारा श्री लक्ष्मी आफसैट प्रिंटर्स, निकट ज्योतिष भवन, बिजनौर 246701 से मुद्रित एवं 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰) से प्रकाशित। पंजीयन संख्या : UP HIN 2008/25034

संपादक : डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

संरक्षक

रो॰ असित मित्तल, नोएडा
श्री अजय रस्तोगी, मेरठ
श्री निश्चल रस्तोगी, मेरठ
श्रीमती ताराप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
श्री अनिलकुमार गोयल, नोएडा
रो॰ आर॰के॰ जैन, बिजनौर
रो॰ राजीव रस्तोगी, मुरादाबाद
रो॰ परमकीर्तिसरन अग्रवाल, मु॰न॰
रो॰ देवेंद्रकुमार अग्रवाल, (काशी विश्वनाथ स्टील्स, काशीपुर)
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल, (नैनी पेपर्स, काशीपुर)
श्री विवेक गोयल, संभल
श्री अमितप्रकाश, मुज़फ़्फ़रनगर
डॉ॰ प्रकाश, बिजनौर
रो॰ नीरज अग्रवाल, जयपुर
श्री सत्येंद्र गुप्ता, नजीबाबाद
रो॰ नीरज अग्रवाल, मुरादाबाद
श्री महेश अग्रवाल, मुरादाबाद
श्री अशोक अग्रवाल, गुड़गाँव

आजीवन सदस्य

रो॰ आर॰ के॰ साबू, चंडीगढ़
रो॰ सुशील गुप्ता, नई दिल्ली
डॉ॰ मनोजकुमार, दिल्ली
श्री प्रवीण शुक्ल, दिल्ली

उत्तर प्रदेश

रो॰ डॉ॰ के॰ सी॰ मित्तल, नोएडा
श्री सुभाष गोयल, नोएडा
श्री ओमप्रकाश यति, नोएडा
डॉ॰ कुँअर बेचैन, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ अंजु भटनागर, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश रोहतगी, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मंजु शुक्ल, ग़ाज़ियाबाद
डॉ॰ मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद
डॉ॰ पल्लवी दीक्षित, शिकोहाबाद
रो॰ डॉ॰ एस॰ के॰ राजू, हाथरस
श्री दिनेशचंद्र शर्मा, मोदीनगर
श्री एस॰ सी॰ संगल, शाहजहाँपुर
डॉ॰ प्रतीक मिश्र, कानपुर
डॉ॰ नीरू रस्तोगी, कानपुर
श्री विनोदकुमार गोयल, दादरी
श्री अलीहसन मकरैंडिया, दादरी
डॉ॰ प्रणव शर्मा, पीलीभीत
श्रीमती पिंकी चतुर्वेदी, वाराणसी
श्री अरविंदकुमार, जालौन
नेशनल थर्मल पावर कारपोरेशन
डॉ॰ राकेश शरद, आगरा

खुरजा (उ॰प्र॰)

श्रीमती उषारानी गुप्ता
रो॰ राकेश बंसल
रो॰ डॉ॰ दिनेशपाल सिंह
रो॰ प्रेमप्रकाश अरोड़ा
रो॰ सुनील गुप्ता आदर्श

जे॰पी॰ नगर

रो॰ अभय आनंद रस्तोगी, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ विनोदकुमार अग्रवाल, हसनपुर
रो॰ डॉ॰ सरल राघव, अमरोहा
डॉ॰ बीना रुस्तगी, अमरोहा
रो॰ शिवकुमार गोयल, धनौरा
रोटरी क्लब, भरतियाग्राम

अफजलगढ़ (बिजनौर)

रो॰ रविशंकर अग्रवाल
रो॰ अतुलकुमार गुप्ता
रो॰ महेंद्रमानसिंह शेखावत
श्री वासुदेव सरीन
श्री हंसराज सरीन
श्री अमृतलाल शर्मा
श्री सुरेशकुमार

चाँदपुर (बिजनौर)

डॉ॰ मुनीशप्रकाश अग्रवाल, चाँदपुर
श्री सुरेंद्र मलिक, चाँदपुर
गुलाबसिंह महाविद्यालय, चाँदपुर
श्री बलराजसिंह, बाष्टा (बिजनौर)

धामपुर (बिजनौर)

डॉ॰ लालबहादुर रावल
श्री जे॰पी॰ शर्मा, शुगर मिल, धामपुर
डॉ॰ शंकर क्षेम
श्री नरेंद्रकुमार गुप्त
डॉ॰ ऋषि गौड़
डॉ॰ मिथिलेश माहेश्वरी
रो॰ शिवओम अग्रवाल
डॉ॰ वीरेंद्रकुमार शर्मा
डॉ॰ कृष्णकांत चंद्रा
डॉ॰ श्रीमती संहिता शर्मा
डॉ॰ पूनम चौहान
डॉ॰ भानु रघुवंशी
डॉ॰ ख़ालिदा तरन्नुम
श्री आर्यभूषण गर्ग
श्री संजय जैन
श्री निशिवेशसिंह एडवोकेट
श्री दीपेंद्रसिंह चौहान
मौ॰ सुलेमान, परवेज़ अनवर, शेरकोट
कुँ॰ निहालसिंह, दुर्गा पब्लिक स्कूल
प्राचार्य, आर॰एस॰एम॰ (पी॰जी॰)कालेज
प्राचार्या, एस॰बी॰डी॰ महिला कालेज
राधा इंटर कालेज, अल्हेपुर (धामपुर)
धामपुर पब्लिक कन्या इंटर कालेज

नजीबाबाद (बिजनौर)

श्री सत्येंद्रकुमार गुप्ता
श्री इंद्रदेव भारती
श्री रामअवतार गुप्ता मुज़्तर
श्रीमती रासुलता

बरेली (उ॰प्र॰)

रो॰ डॉ॰ आई॰एस॰ तोमर
रो॰ रविप्रकाश अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रामप्रकाश गोयल
डॉ॰ सविता उपाध्याय
डॉ॰ महाश्वेता चतुर्वेदी
रो॰ पी॰पी॰ सिंह
डॉ॰ अशोक उपाध्याय
रो॰ श्यामजी शर्मा
श्री विशाल अरोड़ा
डॉ॰ वाई॰एन॰ अग्रवाल
श्री राजेंद्र भारती

बिजनौर (उ॰प्र॰)

श्री राजकमल अग्रवाल
डॉ॰ बलजीत सिंह
रो॰ रमेश गोयल
रो॰ ज्ञानदेव विज्ञानदेव अग्रवाल

रो॰ महेंद्रकुमार जैन
श्रीमती मोनिका भटनागर
डॉ॰ ओमदत्त आर्य
श्री जोगेंद्रकुमार अरोरा
श्री चंद्रवीरसिंह गहलौत, एडवोकेट
रो॰ आर॰डी॰ शर्मा
डॉ॰ निकेता
डॉ॰ अजय जनमेजय
श्री पुनीत अग्रवाल
डॉ॰ निरंकारसिंह त्यागी
श्री अशोक निर्दोष
श्री वी॰पी॰ गुप्ता
रो॰ प्रदीप सेठी
डॉ॰ तिलकराम, वर्धमान कॉलेज
आर॰बी॰डी॰महिला महाविद्यालय
रो॰ डॉ॰ रजनीशचंद्र ऐरन, हल्दौर
श्री अरुण गोयल, किरतपुर
रो॰ डॉ॰ दीपशिखा लाहौटी, नगीना
रो॰ बी॰के॰ मालपानी, स्योहारा
श्रीमती हेमलता देवी, गोहावर
नहटौर डिग्री कालेज, नहटौर
श्री विवेक गुप्ता, शादीपुर

मवाना (उ॰प्र॰)

रो॰ अनुराग दुबलिश
श्री अंबरीशकुमार गोयल
आर्य कन्या इंटर कालेज
ए॰एस॰ इंटर कालेज
लक्ष्मीदेवी आर्य कन्या डिग्री कालेज

मुज़फ़्फ़रनगर (उ॰प्र॰)

रो॰ शरद अग्रवाल
रो॰ वीरेंद्र अग्रवाल
रो॰ दिनेशमोहन
रो॰ डॉ॰ ईश्वर चंद्रा
रो॰ डॉ॰ अमरकांत
रो॰ अनिल सोबती
रो॰ डॉ॰ जे॰के॰ मित्तल
रो॰ सुधीरकुमार गर्ग
रो॰ प्रदीप गोयल
श्री गौरव प्रकाश
डॉ॰ बी॰के मिश्रा
रो॰ राकेश वर्मा
रो॰ संजीव गोयल
प्राचार्य, एस॰ डी॰ कालेज ऑफ लॉ
प्रधानाचार्य, ग्रेन चेम्बर्स पब्लिक स्कूल
रो॰ संजय जैन, शामली
रो॰ डॉ॰ कुलदीप सक्सेना, शामली
रो॰ उमाशंकर गर्ग, शामली
रो॰ डॉ॰ सुनील माहेश्वरी, शामली
श्री अतुलकुमार अग्रवाल, खतौली

मुरादाबाद (उ॰प्र॰)

रो॰ सुधीर गुप्ता, एडवोकेट
रो॰ बी॰एस॰ माथुर
रो॰ ललितमोहन गुप्ता
रो॰ सुरेशचंद्र अग्रवाल
रो॰ राकेश सिंहल
श्री शचींद्र भटनागर
रो॰ योगेंद्र अग्रवाल
रो॰ नीरज अग्रवाल
रो॰ के॰ के॰ अग्रवाल
रो॰ श्रीमती सरिता लाल
रो॰ श्रीमती चित्रा अग्रवाल
डॉ॰ महेश 'दिवाकर'
रो॰ ए॰एन॰ पाठक
रो॰ चक्रेश लोहिया
रो॰ यशपाल गुप्ता
रो॰ सुधीर खन्ना
रो॰ रमित गर्ग
श्री विनोदकुमार
डॉ॰ रामानंद शर्मा
डॉ॰ पल्लव अग्रवाल
श्री हरीश गर्ग, संभल (मुरादाबाद)
रो॰ डॉ॰ राकेश चौधरी, चंदौसी

मेरठ (उ॰प्र॰)

रो॰ ओ॰पी॰सपरा
रो॰ विष्णुशरण भार्गव
रो॰ एम॰एस॰ जैन
श्री दामोदरदत्त दीक्षित
रो॰ गिरीशमोहन गुप्ता
रो॰ डॉ॰ हरिप्रकाश मित्तल
रो॰ प्रणय गुप्ता
डॉ॰ आर॰ के॰ तोमर
रो॰ संजय गुप्ता
श्री किशनस्वरूप
रो॰ नरेश जैन
रो॰ सागर अग्रवाल
डॉ॰ अनिल कुमारी
रो॰ प्रदीप सिंहल
श्री शिवानंद सिंह 'सहयोगी'
रो॰ नवल शाह
डॉ॰ रामगोपाल भारतीय
श्रीमती बीना अग्रवाल
श्रीमती मृदुला गोयल
रो॰ मुकुल गर्ग

रामपुर (उ॰प्र॰)

श्री शांतनु अग्रवाल
श्री नरेशकुमार सिंघल
डॉ॰ श्रीमती मीना महे

लखनऊ (उ॰प्र॰)

श्री महेशचंद्र द्विवेदी, आई॰पी॰एस॰
डॉ॰ किरण पांडेय
श्री अनुपम मित्तल
श्रीमती रेणुका वर्मा
श्रीमती उषा गुप्ता
श्री अमृत खरे
श्री विनायक भूषण

सहारनपुर (उ॰प्र॰)

डॉ॰ विपिनकुमार गिरि
श्री श्रीपाल जैन ठेकेदार
श्री पूर्णसिंह सैनी, बेहट
श्री विनोद 'भृंग'
प्राचार्या, एम॰एल॰जे॰खेमका गर्ल्स कालेज

उत्तराखंड

डॉ॰ आशा रावत, देहरादून
डॉ॰ राखी उपाध्याय, देहरादून
श्री अमीन अंसारी, जसपुर
श्री विपिनकुमार बख्शी, कोटद्वार
प्राचार्य, धनौरी डिग्री कालेज, धनौरी
प्रधानाचार्य, नेशनल इंटर कालेज, धनौरी

रुड़की

डॉ॰ अनिल शर्मा
श्री प्रेमचंद गुप्ता
श्री अविनाशकुमार शर्मा
श्री वासुदेव पंत

श्री मयंक गुप्ता
श्री अमरीष शर्मा
श्री उमेश कोहली
श्री जे॰पी॰ शर्मा
श्री मनमोहन शर्मा
श्री सुनील साहनी
श्री अशोक शर्मा 'आर्य'
श्री मेनपालसिंह
श्री संजय प्रजापति
श्री ओमदत्त शर्मा
श्री अरविंद शर्मा
श्री राजेश सिंहल
श्री ब्रिजेश गुप्ता
श्री संजीव राणा
श्री ऋषिपाल शर्मा
श्री राजपाल सिंह
बी॰एस॰एम॰इंटर कालेज,
आनंदस्वरूप आर्य सरस्वती विद्या मंदिर
योगी मंगलनाथ सरस्वती विद्या मंदिर
शिवालिक पब्लिक स्कूल, डंडेरा

काशीपुर

श्री समरपाल सिंह
श्री प्रमोदकुमार अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ वी॰एम॰ गोयल
रो॰ डॉ॰ एस॰पी॰ गुप्ता
रो॰ डॉ॰ डी॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ एन॰के॰ अग्रवाल
रो॰ डॉ॰ रविनंदन सिंघल
रो॰ विजयकुमार जिंदल
रो॰ जितेंद्रकुमार
रो॰ प्रदीप माहेश्वरी
रो॰ रवींद्रमोहन सेठ
श्री प्रमोदसिंह तोमर

आंध्र, कर्नाटक एवं तमिलनाडु

श्री श्याम गोयनका, बैंगलौर
डॉ॰ दीपा के॰, बैंगलोर (कर्नाटक)
सुश्री जयालक्ष्मी, चेन्नई
श्री अनंत काबरा, हैदराबाद

पंजाब

रो॰ विजय गुप्ता, राजपुरा
कर्नल तिलकराज, जालंधर
श्री सागर पंडित, अमृतसर

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़

रो॰ रविप्रकाश लंगर, उज्जैन
डा॰ हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
डॉ॰ अशोक भाटी, उज्जैन
श्री माणिक वर्मा, भोपाल
श्री प्रदीप चौबे, ग्वालियर
श्री उमाशंकर मनमौजी, भोपाल
श्री जगदीश जोशीला
श्री विनोदशंकर शुक्ल, रायपुर
श्री गजेंद्र तिवारी, बागबाहरा

महाराष्ट्र, गुजरात

रो॰ सज्जन गोयनका, मुंबई
रो॰ डॉ॰ माधव बोराटे, पुणे
श्रीमती रिज़वाना कश्यप, पुणे
रो॰ सुरेश राठौड़, बंबई
डॉ॰ शैलजा सुरेश माहेश्वरी, अमलनेर
श्री मधुप पांडेय, नागपुर
श्री सुभाष काबरा
श्री अरुणा अग्रवाल, पुणे
श्री सागर खादीवाला, नागपुर
श्री वनराज आर्ट्स एंड कामर्स कालेज,
धरमपुर (बलसाढ)

राजस्थान

रो॰ डॉ॰ अशोक गुप्ता, जयपुर
रो॰ अजय काला, जयपुर
श्री कमल कोठारी, जयपुर
रो॰ विवेक काला, जयपुर
श्री आर॰सी॰ अग्रवाल, जयपुर
श्री राजीव सोगानी, जयपुर
श्री सुरेश सबलावत, जयपुर
श्री कमल टोंगिया, जयपुर
श्री मुकेश गुप्ता, जयपुर
श्री विनोद गुप्ता, जयपुर
श्री गिरधारी शर्मा, जयपुर
रो॰ एस॰के॰ पोद्दार, जयपुर
रो॰ राजेंद्र सांघी
रो॰ आर॰पी॰ गुप्ता
श्री जयपुर चेंबर ऑफ़ कॉमर्स एंड इंड॰
डॉ॰ शंभुनाथ तिवारी, भीलवाड़ा
श्री मुरलीमनोहर बासोतिया, नवलगढ़

हरियाणा

श्री विकास, तहसील महम, रोहतक
सुश्री स्नेहलता, रोहतक
श्रीमती सुदेशकुमारी, जींद
श्री हरिदर्शन, सोनीपत
श्रीमती प्रवीनबाला, जुलाना मंडी
श्रीमती अनिलकुमारी, घिलौड़ कलाँ
डॉ॰ प्रवीणकुमार वर्मा, फरीदाबाद
श्रीमती रेखारानी, फरीदाबाद
श्रीमती सविताकुमारी, सोनीपत
श्रीमती सुमनलता, रोहतक
श्री सुरेशकुमार, भिवानी
श्रीमती सविता, चरखी दादरी
छोटूराम किसान कालेज, जींद
प्राचार्य, ए॰पी॰जे॰ सरस्वती पी॰जी॰
कालेज, चरखी दादरी
श्रीमती विधु गुप्ता, गुड़गाँव

शोध दिशा

क्या आप 'शोध-दिशा' परिवार के सदस्य हैं? यदि नहीं, तो आपसे आग्रह है कि इसके आजीवन सदस्य बनकर अपना सहयोग प्रदान कीजिए।

कृपया आज ही 1100 रुपए भेजकर शोध-दिशा की आजीवन सदस्यता ग्रहण कीजिए।

आपसे कुछ बातें...

बहुत दिनों से मन में था कि भारत से बाहर रहनेवाले हिंदी-लेखकों की रचनाओं पर आधारित विशेषांक प्रकाशित किया जाए।

अपने देश से बाहर रहकर हिंदी की जोत जलाए रखने वाले ये हिंदी-लेखक वहाँ की भागदौड़-भरी ज़िंदगी में से समय निकालकर लेखनकार्य करते हैं, किंतु अधिकांश पाठक और समीक्षक इनकी रचनाधर्मिता से अपरिचित ही हैं।

मैंने अनुभव किया है कि इनके लेखन में जहाँ भारत अभी भी विद्यमान है, वहीं उसमें प्रवास की दुविधाएँ, वहाँ के अजनबीपन और बिखराव की स्थितियाँ भी चित्रित हुई हैं। यदि प्रवासी-मन को समझना है तो इस रचनाकर्म को अपने निकट लाना आवश्यक है।

ऐसा ही एक सुअवसर आया और श्रीमती इला प्रसाद जी से फ़ोन पर संपर्क हुआ; इसके बाद सबसे पहले अमेरिका में बस गए लेखकों की कहानियों को प्रकाशित करने की योजना बनाई गई।

इला जी ने पूरी निष्ठा से इस दायित्व का निर्वाह किया और इक्कीस अमेरिकी आप्रवासी कहानीकारों की प्रतिनिधि कहानियों को नेट से मेरे पास भेजा। इन कहानियों में से दस कहानियाँ इस अंक में प्रकाशित की जा रही हैं। शेष कहानियों को 'शोध-दिशा' के आगामी अंक में प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है।

आपकी प्रतिक्रिया हमारे लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण होगी, इसलिए अपना मत और दृष्टिकोण अवश्य ही लिखें।

पूरी भावना के साथ,

कहानी

लांड्रोमैट/ सोमा वीरा ■ 8
वापसी/ उषा प्रियवंदा ■ 12
बहुत अच्छा आदमी/ रमेशचंद्र धुस्सा ■ 17
धीरा पंडित, केकड़े और मकड़ियाँ/ डॉ॰ कमलादत्त ■ 19
मेहमान/ डॉ॰ उषादेवी कोल्हटकर ■ 27
लकीर/ उमेश अग्निहोत्री ■ 31
अवसान/ डॉ॰ सुष्म बेदी ■ 35
वानप्रस्थ/ अनिलप्रभा कुमार ■ 39
धूप/ सुदर्शन प्रियदर्शिनी ■ 44
कौनसी ज़मीन अपनी/ डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा ■ 47

पुण्य स्मरण

यादों के झरोखे में काका/ डॉ॰ मीना अग्रवाल ■ 52

कविता

परदेस में यादें/ डॉ॰ मीना अग्रवाल ■ 7

संपादकीय ■ 6/ समीक्षा ■ 55/ साहित्यिक गतिविधियाँ ■ 57/ सहयात्री पत्र-पत्रिकाएँ ■ 59

भाषा एवं संस्कृति के मरुस्थल में बैठे लोगों की कथा

अमेरिका के आप्रवासी हिंदी-साहित्य पर दृष्टि डालें तो कुछ बातें स्वत: स्पष्ट हो जाती हैं। अपेक्षाकृत नए, किंतु तेज़ी से समृद्ध हो रहे इस साहित्य को हिंदी साहित्य की मुख्य धारा का अंग बनना अभी बाक़ी है। कुछ गिने- चुने नाम हैं, जो भारत में अमेरिकी आप्रवासी साहित्य के संबंध में जानकारी का स्रोत हैं अन्यथा साहित्यकारों की एक बहुत बड़ी संख्या है, जो निरंतर सृजनशील है और हिंदी साहित्य का आम पाठक, जिनमें लेखक और आलोचक भी हैं, उनसे अपरिचित है। हिंदी साहित्य के कोष में अपने अनुभव से हर रोज़ कुछ नया और सार्थक जोड़ता, दिन-प्रतिदिन मुखर और सशक्त होता साहित्यकारों का यह समुदाय अब तक अनुल्लिखित या उपेक्षित ही कहा जाएगा।

कुछ पचास-साठ साल पुराने अमेरिकी हिंदी साहित्य के इतिहास पर दृष्टि डालें तो स्व॰ सोमा वीरा जी को अमेरिका की पहली आप्रवासी रचनाकार माना जा सकता है, जो 1950 के उत्तरार्द्ध में अमेरिका में आ बसी थीं। आकार में भारत से ढाई गुना बड़े इस देश में भारतीयों की संख्या नगण्य थी और वे अलग-अलग कोनों में बिखरे हुए भी थे। संपर्क के साधन कम थे और मशीनी जीवन की चुनौतियाँ ज़्यादा। उस काल में अमेरिका आए भारतीयों को स्वभाषा, संस्कृति का जो मरुस्थल यहाँ मिला होगा, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। किंतु, यह भी स्मरण रखना होगा कि उनका अपने देश से यह निर्वासन स्वैच्छिक था, न कि आरोपित और इसलिए उनकी व्यथा-कथा मॉरीशस, सूरीनाम आदि देशों में गए गिरमिटिया मजदूरों की व्यथा-कथा से बहुत भिन्न है। उसे समझने, उसके मूल्यांकन के लिए भिन्न क़िस्म की संवेदनशीलता की आवश्यकता है, जो अभी कम दिखाई पड़ रही है। सोच के लिए नए वातायन खोलती, दो संस्कृतियों की टकराहट से उत्पन्न बेचैनी, निराशा, कुंठा एवं अपने को उस नए वातावरण में समायोजित करने की आवश्यकता से उत्पन्न समस्याओं की अनुगूँज ही अमेरिकी आप्रवासी हिंदी साहित्य का मुख्य स्वर है।

वर्तमान में अपनी पहचान के संकट के दौर से बाहर आ चुका आप्रवासी भारतीय समुदाय अब भिन्न क़िस्म की समस्याओं से गुज़र रहा है। वह अपनी अगली पीढ़ी को, जो भारतीय अमेरिकी ज़्यादा है, अपने जीवनमूल्य हस्तांतरित करने के लिए प्रयत्नशील है। वह मंदिर, गुरुद्वारे बनवाता, भारतीय भाषाओं की शिक्षा के लिए स्कूल के स्तर से अनुदान करता, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करता, करवाता और तब भी बहुत हद तक छले जाने के अहसास से भरा है। दो पीढ़ियों की टकराहट सनातन है और उसकी भी एक भिन्न क़िस्म की झलक यहाँ के साहित्य में निरंतर दिखाई पड़ रही है। इतना ही नहीं अपनी मिट्टी, स्वदेश के प्रति भी जो मोह का भाव है, वह भी कहीं-न-कहीं टूटता दिखता है। यह समझ विकसित हो रही है कि वहाँ भी संबंध तभी तक हैं, जब तक दूरियाँ हैं। अमेरिका में ही अपनी ज़रूरतों का छोटा भारत बनाना उसे अधिक उचित जान पड़ता है, जो पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति का मनोरंजक घालमेल है और अगली पीढ़ी, आमतौर पर जैसा कि कहा जाता है– ए॰बी॰सी॰डी॰ (अमेरिका बॉर्न कन्फ़्यूस्ड देसी) है।

वेब पत्रिकाओं और ब्लागों की दुनिया ने आप्रवासी अमेरिकी साहित्य को भी सामने लाने में एक प्रमुख भूमिका निभाई है और निभा रही है। सच तो यह है कि विभिन्न देशों में फैले मुझ-जैसे रचनाकारों की एक पूरी पीढ़ी है, जो वेब पत्रिकाओं के युग में और उसके माध्यम से विकसित हुई है, किंतु भारत का बहु संख्यक हिंदी-पाठक, उस दुनिया से अभी भी अनभिज्ञ है। ऐसे में 'शोध-दिशा' पत्रिका का यह प्रयास स्वागत-योग्य एवं प्रशंसनीय कहा जाएगा कि उसके माध्यम से अमेरिकी आप्रवासी हिंदी साहित्य का एक उल्लेखनीय भाग आपके सामने आ रहा है। मैं डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल जी की आभारी हूँ कि उन्होंने इस अंक की योजना बनाई और यह दायित्व मुझे दिया। इक्कीस रचनाकारों की कहानियाँ आपके सामने कालक्रम से आएँगी और मुझे विश्वास है कि आपकी स्वीकृति इन्हें मिलेगी। आपके अंदर इन कथाकारों की अन्य रचनाएँ पढ़ने की इच्छा भी जाग्रत होगी।

अमेरिकी आप्रवासी रचनाकारों की संख्या बहुत बड़ी है। अमेरिका आप्रवासी कथासाहित्य पर केंद्रित डॉ॰ अंजना संधीर जी की पुस्तक 'प्रवासी आवाज़' यदि प्रकाशित न हुई होती तो यह काम अपेक्षाकृत कठिन होता। मैं उनकी बहुत-बहुत आभारी हूँ।

प्रतिनिधि रचनाकारों का चयन अपने-आपमें कठिन कार्य था। मैं अपने इस दायित्व में कितनी सफल रही हूँ, इसका निर्णय मैं पत्रिका के सुधी पाठकों पर छोड़ती हूँ।

अंत में, जब भारत में हिंदी के क्रियोलीकरण का सुनियोजित षड्यंत्र चल रहा है, दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों के माध्यम से फूहड़ भाषा परोसी जा रही है और उसे जनता की माँग बताया जा रहा है, साहित्य भी उससे अछूता नहीं है, तो ऐसे में भारत के विभिन्न प्रांतों से आए इन भारतीय आप्रवासी रचनाकारों की रचनाएँ आपको निश्चित ही सुखकर प्रतीत होंगी। मात्र मनोरंजन ही नहीं, कुछ सार्थक पठन-पाठन का अनुभव आपको ये कहानियाँ दें, आपका स्नेह और आशंसा इन्हें मिले, इस शुभकामना के साथ।

इला प्रसाद
12934 Meadow Run
Houston, TX 77066 USA
E mail : ila_prasad1@yahoo.com

परदेस में यादें

डॉ॰ मीना अग्रवाल

दूर पश्चिम में तुम जहाँ भी हो
दिल की धड़कन लहर-लहर भेजूँ
क्या वो उड़कर हवा में पहुँचेगी
बास बेले की मैं अगर भेजूँ

छत के ऊपर विमान गुज़रा है
कल्पनाएँ निहारती हैं तुझे
अजनबी लोग इसमें हैं लेकिन
मेरी आँखें पुकारती हैं तुझे

तपन बढ़ी है तो तन-मन जला है अब के बरस
शरद की रुत में भी सूरज तपा है अबके बरस
चला गया है जो अश्कों को पोंछनेवाला
हमारी आँखों में सूखा पड़ा है अबके बरस

वह अब तो शाम को घर लौटकर नहीं आता
उसे मिली भी जो मंज़िल तो इतनी दूर मिली
सुना है पार समुंदर, पराये देश में है
जो उसने नौकरी ढूँढी तो कितनी दूर मिली

वह अपनी आँखों में उमड़ी घटाएँ भेजती है
वह अपने प्यार की ठंडी हवाएँ भेजती है
कभी तो ध्यान के हाथों, कभी पवन के साथ
वह माँ है, बेटे को शुभकामनाएँ भेजती है

वे भोली-भाली-सी शक्लें भी साथ रहती हैं
सुनी-सुनाई-सी बातें भी साथ रहती हैं
अकेले आए थे परदेस में, मगर यह क्या?
गली-मुहल्ले की यादें भी साथ रहती हैं

नयन की आस तो बाँहों का प्यार खोले हुए
तुम्हारी राह में फूलों के हार खोले हुए
तुम्हें ख़बर ही नहीं है कि इक बरस बीता
अभी वह बैठी है कमरे के द्वार खोले हुए

अभी से आस का दीपक जलाए बैठी है
अभी से द्वार पे आँखें लगाए बैठी है
मैं लौट आऊँगा सावन में, कह गए थे तुम
हथेलियों पे वह मेहँदी रचाए बैठी है

किसी ने तुमसे कहा था नगर से जाते हुए
हमें भी याद ख़तों के जवाब में रखना
किसी समय जिसे पढ़कर भुला दिया जाए
हमारे चित्र न ऐसी किताब में रखना

हमें मालूम है दिन तुम भी इक-इक गिन रहे होगे
यहाँ भी शुभ समय की इंतज़ारी रोज़ होती है
नज़र से दूर होकर भी उपस्थित घर में रहते हो
नहीं हो तुम मगर चर्चा तुम्हारी रोज़ होती है

कहाँ होगे? न जाने किस गली में घूमते होगे?
तुम्हारा ध्यान क्यों बैठे-बिठाए आने लगता है
यहाँ तुम थे तो आधी रात को भी दिन-सा रहता था
मगर अब शाम होते ही अँधेरा छाने लगता है

सभी से मिल के बातों का दिखावा करती रहती हूँ
तुम्हें अब क्या बताऊँ किस तरह से दिन गुज़रता है
सभी का प्यार मिलता है, सभी हैं चाहनेवाले
मगर मुझको भरे घर में अकेलापन अखरता है

तुम्हें परदेस में जाए हुए दो वर्ष गुज़रे हैं
वहाँ किस हाल में रहते हो लिक्खा तक नहीं तुमने
गिला कैसे करूँ? तुम तक न मेरी बात पहुँचेगी
मुझे चिट्ठी में माँ की अबके पूछा तक नहीं तुमने

नहीं जन्मीं जो अब तक वे हवाएँ भेंट करती हूँ
नई दुनिया, नए युग की दिशाएँ भेंट करती हूँ
जहाँ भी तुम रहो सम्मान से, सुख से रहो, तुमको—
मैं अब परदेस में शुभकामनाएँ भेंट करती हूँ

❐ 16, साहित्य विहार
बिजनौर (उ॰प्र॰)
मो॰ 09319441818

लांड्रोमैट

सोमा वीरा

हाथ में मैले वस्त्रों का थैला लिए, मार्गरेट लांड्रोमैट में प्रवेश कर रही है। मशीन में वस्त्र डालकर वह यहाँ आएगी। हम दोनों यहाँ बैठकर कॉफ़ी पिएँगे।

यह छोटा-सा ड्रग-स्टोर है। एक ओर दवाएँ तथा साबुन-मंजन आदि बिकते हैं। दूसरी ओर, खाने-पीने के लिए एक गोल काउंटर है। वहीं एक किनारे, छोटी-छोटी चार-पाँच लंबाकार मेज़ें भी पड़ी हैं। अधिकतर लोग काउंटर के पास लगे ऊँचे स्टूल पर बैठकर ही, कुछ खा-पीकर, झटपट अपनी राह लेते हैं; किंतु मुझे मार्गरेट की प्रतीक्षा करनी है, अत: मैं ख़ाली मेज़ों पर निगाहें डालता, यहाँ एक कोने में बैठा हूँ।

दवाओं की गंध से भरे इस ड्रग-स्टोर में कॉफ़ी पीना मुझे अच्छा नहीं लगता, किंतु मार्गरेट को यह लांड्रोमैट बहुत पसंद है। समझ में नहीं आता क्यों? क्योंकि कोई ख़ास बात नहीं है इस लांड्रोमैट में। अमरीका के छोटे-बड़े सभी नगरों में, ऐसे अनेक लांड्रोमैट हैं। यहाँ इंसान बेकार खड़ा रहता है, मशीनें काम करती हैं।

एक ओर वस्त्र धोने की मशीनें हैं, दूसरी ओर सुखाने की। जेब से एक सिक्का निकालकर डालते ही मशीन चलने लगती है ... घुर्र, घुर्र ...

पहली-पहली बार, जब विमल भैया के साथ यहाँ आया था, वह कुछ मुस्कुराकर बोले, 'निर्मल, एक बार की चाय चाहे गोल कर जाना, किंतु जेब में, इस मशीन के भोजन के लिए पच्चीस सैंट अवश्य रखना। क़मीज़ें यदि सब मैली हो गई हों और जेब में पैसा न हो, तो इस मशीन से यह कहने से काम नहीं चलेगा, 'रामू, यह कमीज़ शाम तक चाहिए हमें, और देखो, धुलाई अगले हफ़्ते मिलेगी।'

जन्म नवंबर 1932, लखनऊ (उ॰प्र॰) भारत में; शिक्षा : बी॰ए॰ (पत्रकारिता), एम॰ए॰ इकोनॉमिक्स एंड इंटरनेशनल रिलेशंस, यूनिवर्सिटी आफ़ कोलोराडो, बोलडर, यू॰एस॰ए॰। पी-एच॰डी॰, इंटरनेशनल रिलेशंस एंड इन इंटरनेशनल इकोनॉमिक डेवलपमेंट, न्यूयार्क यूनिवर्सिटी अमरीका; पचास के दशक के अंतिम भाग में अमरीका आईं। सन् 2004 में उनका देहावसान हो गया। वे एक सशक्त हिंदी लेखिका थीं, साथ ही साथ अँग्रेज़ी में 'साइंस फ़िक्शन' की सशक्त हस्ताक्षर थीं। दस वर्ष की छोटी उम्र से ही उनके लेख प्रकाशित होने लगे थे। 'नवभारत टाइम्स' बंबई में बच्चों के पृष्ठ तैयार करने में उनका सक्रिय योगदान रहा। सन् 1962 में उनकी पुस्तक 'धरती की बेटी' प्रकाशित हुई। सोमा वीरा ने हिंदी में सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखीं। पुस्तकें : धरती की बेटी तथा दो आँखों वाले चेहरे, परछाइयों के प्रश्न (कहानी-संग्रह), तीनी (उपन्यास), साथी हाथ बढ़ाना (एकांकी-संग्रह), Little Bit India Little bit USA अँग्रेज़ी में प्रकाशित व चर्चित उनका काव्य-संग्रह है; पुरस्कार : उन्होंने अमरीका की दस श्रेष्ठ महिलाओं का पुरस्कार यूनिवर्सिटी स्तर पर प्राप्त किया व 1990 में 'हू इज़ हू वर्ल्डवाइड' में उन्हें चुना गया।

हम दोनों की हँसी वाशिंग-मशीन के शोर के ऊपर छा गई थी और आसपास की मशीनों में अपने वस्त्र डालने वाले कोट-पैंटधारी, चौंक-चौंक कर हमारी ओर देखने लगे थे।

पर वह डेढ़ वर्ष पुरानी बात है।

तब मुझे शिकागो आए हफ़्ता-भर भी नहीं हुआ था। उस दिन सवेरे ही हम लोग 'कोऑपरेटिव हाउसिंग' में एक फ़्लैट देखकर आए थे। फ़्लैट आरामदेह था, पर क़ीमत भी काफ़ी थी। सोचते-से स्वर में भैया बोले थे, 'देख निर्मल, सात सौ डॉलर 'डाउन पेमेंट' देने पर, हमें हर महीने केवल दो सौ डालर देने पड़ेंगे और जैसे ही पूरी क़ीमत चुकता हो जाएगी, यह फ़्लैट हमारा हो जाएगा। नगर में ऐसा अच्छा फ़्लैट किराए पर लेंगे, तो एक सौ पचहत्तर से कम में नहीं पड़ेगा।'

मैं चुप-चुप सुनता रहा था।

भैया अपनी ही धुन में कहते जा रहे थे, 'तेरी पढ़ाई डेढ़ साल में पूरी हो जाएगी, ज़्यादा-से-ज़्यादा दो साल में। तुझे नौकरी मिल जाएगी, तो कमल को यहाँ बुला लेंगे। तीनों भाई मिलकर रहेंगे। साथ रहने से आराम भी रहेगा। ख़र्च में भी बचत होगी। कौन जाने-शायद और कोई यहाँ आना चाहे अम्माँ, या बाबूजी, या बरेली वाले चाचाजी। तब होटलों में कमरा खोजते नहीं घूमना पड़ेगा।'

दो दिन पहले ही मैं आया था। चलते समय माँ ने कहा था, 'देख बेटा, वहाँ ज़्यादा अक़्लमंदी न छाँटना। जैसे बड़े भैया कहें वैसे ही करना, परदेस में बड़ों की बात मानकर चलना ही ठीक है।'

माँ की वही बात मेरे कानों में गूँज रही थी। अत: कुछ न कहकर, मैंने चुपके से स्वीकृति में सिर हिला दिया था।

अगले ही दिन, हम लोग अपने नए फ़्लैट में आ गए थे। वह फ़्लैट आज भी उतना ही आरामदेह और सुविधाजनक है; किंतु आज उसका मालिक कोई और है और मेरे हाथों में यह चिट्ठी है—छोटे भाई कमल की। इसके ख़ूबसूरत, बारीक अक्षरों के बीच मानो उसका उत्सुक चेहरा चमक रहा है—भैया, बोलो, तुम मुझे कब अपने पास बुला रहे हो?

मार्गरेट लांड्रोमैट के बाहर निकल आई है। अब वह चौराहे पर खड़ी हरी बत्ती की प्रतीक्षा कर रही है। शीघ्र ही लाल बत्ती हरी में बदल जाएगी। वह सड़क पार कर, सामने के इस दरवाज़े में क़दम रखेगी और अपनी ऊँची एड़ियाँ खटकाते, निकट आकर मेरे पास पड़ी इस कुर्सी पर बैठ जाएगी।

आधे घंटे तक वस्त्र मशीन में धुलते रहेंगे। आधे घंटे मार्गरेट को मेरे पास बैठने और बातें करने की फ़ुरसत रहेगी। बस, इससे अधिक नहीं, मशीन से कपड़े निकलते ही उसे अपने घर लौटना होगा, क्योंकि 'ओवेन' में वह मुर्ग़ा पकने के लिए रख आई है और ओवेन में लगी घड़ी में पकने का समय 'सैट' कर चुकी है। यदि वह समय से नहीं पहुँचेगी, तो मुर्ग़ा ओवेन में ही जल जाएगा और खिड़की-बंद उन दो कमरों में गंध भर जाएगी।

सवेरे से शाम तक उसका जीवन, इन्हीं घरेलू यंत्रों में लगी, ऑटोमैटिक सुइयों के सहारे चलता है। जब भी उसे देखता हूँ, मुझे लगता है— मशीनों के साथ ज़िंदा रहने से, इंसान को भी मशीन बनना पड़ता है।

और आज की तरह, कभी यों अकेले दो क्षण चुपचाप बैठने का अवकाश मिल पाता है, तो मन में दबी वह बात घबराई-सी उभर आती है—इस मशीन-सी दुनिया में रहकर, क्या मैं भी मशीन बनता जा रहा हूँ? क्या मैं भी इंसानियत के वे प्यारे-प्यारे रेशे खोता जा रहा हूँ?

मन छटपटा उठता है और बोझिल-सी वह आवाज़, अवचेतन के गीले गारे पर, कसे तार का-सा निशान छोड़ जाती है—तेरी एक ज़िंदगी पीछे है, एक कहीं आगे है। उन दोनों के बीच, यह जो आज की ज़िंदगी है, इसका सूत्र कहाँ है और परिणति कहाँ है?

दरवाज़ा खुलता है और हवा के एक हलके झोंके के साथ मार्गरेट अंदर क़दम रखती है। आज उसने नीचे गले का ढीला जम्पर पहना है। उसी रंग की, कसी हुई 'शॉर्टपैंट' है, जो घुटनों तक नहीं पहुँचती। पैरों में भूरे रंग के 'फ़्लैट' जूते हैं और हाथ में काग़ज़ का ख़ाली थैला है।

थैला मेज़ के एक पाए के सहारे टिका, वह मेरी ओर देखकर मुसकराती है, 'हलो, निर्मल।'

'हैलो, मार्ज! हाउ आर यू?'

'फ़ाइन, थैंक यू!'

बैरा आकर कॉफ़ी का ऑर्डर ले जाता है। मार्गरेट चुप बैठी खिड़की के बाहर ताकती रहती है।

आजकल जब वह इस प्रकार चुप बैठती है, तो मेरा मन डर जाता है, क्योंकि मैं जानता हूँ पिछले कुछ दिनों से उसकी इस चुप्पी में एक प्रश्न उभर रहा है। दिन-ब-दिन वह प्रश्न अधिक ज़ोर पकड़ता जा रहा है, किंतु मैं उससे घबराता हूँ। मैं उस प्रश्न को सुनना नहीं चाहता। मुझे डर लगता है। मेरा मन अभी उसका उत्तर देने के लिए तैयार नहीं, अभी वह सोचने के लिए कुछ और समय चाहता है।

काउंटर पर से उठकर, कोई हमारी ओर आता है, 'हैलो, मार्जी।'

मार्गरेट चौंककर सिर घुमाती है। उसकी नीली आँखों में चमकदार ख़ुशी की चादरें-सी बिछ जाती हैं, 'ओह, हैलो, पीटर!'

अचानक मार्गरेट को ध्यान आता है कि वह मेरे साथ है।

मुड़कर वह मेरी ओर देखती है, 'निर्मल, तुम पहले कभी पीटर से मिले हो? हम दोनों एक ही दफ़्तर में काम करते हैं। पीटर, यह मेरे मित्र निर्मलकुमार हैं।'

कुर्सी से ज़रा-सा उठा, मैं पीटर से हाथ मिलाता हूँ, 'बड़ी ख़ुशी हुई आपसे मिलकर।'

'मुझे भी', वह मार्गरेट की ओर देखता है, 'मार्जी, पास के स्टोर से मुझे कुछ ख़रीदना है। क्या तुम मेरी मदद कर सकोगी?'

'क्यों नहीं, ज़रूर। निर्मल, क्या तुम दो मिनट के लिए मुझे अवकाश दोगे?' कहते-कहते वह उठ खड़ी होती है।

जा तो वह रही है। जाएगी ही। औपचारिकता निभाने के लिए मैं भी कह देता हूँ, 'ज़रूर-ज़रूर।'

मुसकाकर वह चल देती है, पीटर आगे बढ़ दरवाज़ा खोलता है। मुड़कर, मार्गरेट मेरी ओर देख मुस्कुराती है, और सखा-भाव से हाथ ज़रा हिला, बाहर निकल जाती है।

मैं कुर्सी से पीठ टिकाकर बैठ जाता हूँ।

लगता है जैसे काउंटर पर बैठे व्यक्तियों की आवाज़ें सैकड़ों मील दूर से सुनाई दे रही हैं ... जैसे ... मेरी अवचेतना पर कसा तार, ज़रा-सा सरक कर, एक ओर गहरी लकीर बना गया है...

आँखें खोलीं तो देखा सामने कॉफ़ी है। बैरा आया होगा। प्याले रखकर, लौट गया होगा।

सहसा मन न जाने कितना कड़वा हो उठा।

जेब से बॉल पॉइंट पैन निकाल, नैपकिन के एक कोने पर लिखा, 'मार्ज, अचानक एक ज़रूरी काम याद आ गया, इसलिए जा रहा हूँ। संध्या को घर पर ही रहूँगा, अवकाश हो तो फ़ोन कर लेना।'

नैपकिन उसके प्याले के नीचे दबा दिया। बैरे को बुलाकर

पैसे चुका दिए और समझा दिया कि मार्गरेट के लौटने तक वह प्याले न उठाए। उसने स्वीकृति में सिर हिला दिया, तो मैं बाहर निकल, बस-स्टैंट पर खड़ा हो गया।

मन पर पड़ी लकीर पुनः कसक उठी– तेरी एक ज़िंदगी पीछे है, एक कहीं आगे है। उन दोनों के बीच, यह जो आज का अंतराल है, इसका सूत्र कहाँ है और सीमा कहाँ है?

निगाहें पीछे की ओर लौटती हैं, तो सूत्र खोजती ही रह जाती हैं–कब हुई थी इस नई ज़िंदगी की शुरुआत?

–जब भैया ने व्यापार के सिलसिले में शिकागो आने का निश्चय किया था, तब?

–या तब जबकि मैं रुड़की इंजीनियरिंग कालेज की प्रवेश-परीक्षा में उत्तीर्ण न हो सका था?

–या तब जबकि भैया की पमेला मार्टिन से पहली-पहली बार मुलाक़ात हुई थी?

–या तब, जबकि आँसुओं से भीगा पत्र आया था माँ का, और पढ़कर भैया बोले थे, 'उफ् हमारे घर की ये बड़ी-बूढ़ियाँ!'

–या तब, जबकि ...

निगाहें लौटती हैं पीछे की ओर, तो भटकती ही रह जाती हैं।

अभी पिछले हफ़्ते की ही तो बात है। भैया को खोजते उनके अपार्टमेंट तक पहुँच गया। वह मिले नहीं, केवल भाभी थीं।

मुझे देखते ही बोलीं, 'निर्मल! ख़ूब आए तुम, मेरी वाशिंग-मशीन ख़राब हो गई है। ये कपड़े लांड्रोमैट तक ले जाने हैं। ज़रा ले तो जाओ।'

मैं मुरादाबाद होता और भाभी, सरला, कुंती या मधूलिका होतीं, तो मैं झटपट कपड़ों की गठरी उठा, लपककर चल दिया होता और चलते-चलते कहा होता, 'देखो भाभी, मेरे लौटने तक प्याज़ के पकौड़े तैयार रखना, यदि लौटते ही सामने प्लेट न मिली तो ...'

भाभी हँस पड़ी होतीं और उस हँसी की डोर से, गैस के गुब्बारे-सा बँधा, मैं फूला-फूला क़दम बढ़ाता जाता।

किंतु यह मुरादाबाद नहीं, शिकागो है और भाभी, कुंती, सरला या मधूलिका नहीं, पमेला हैं। प्याज़ के पकौड़े तो दूर की बात है, इनके हाथ से एक प्याला चाय भी बड़े भाग्य से मिलती है और जब मिलती है तब सभ्यता के अनुसार, चेहरे पर एक लंबी-चौड़ी मुस्कान लाकर कहना होता है, 'थैंक यू!'

अतः झटपट कहा, 'आई एम सॉरी, पमेला! आज तो मुझे ज़रा भी छुट्टी नहीं। भैया कहाँ हैं? उनसे कुछ पूछना है।'

लगा कि पमेला बुरा मान गई है।

लगा कि उसकी आँखें साफ़ कह रही हैं–बड़ी हिंदुस्तान की कहानियाँ सुनाया करते हो कैसे मौसी, चाची और रिश्ते की भाभी की फ़रमाइशें पूरी करने के लिए, भरी धूप में भी साइकिल लेकर बाज़ार दौड़ा करते थे। मैं भूले-भटके कभी कोई ज़रूरी काम भी कह देती हूँ, तो झट से कह देते हो–आई एम सॉरी। यही तुम्हारी भारतीय सभ्यता है?

किंतु उस अनकहे अभियोग का मुद्रा पर ज़रा भी असर नहीं हुआ। अपनी भारतीय सभ्यता के अनुसार, एक दिन भूल से उन्हें 'भाभी' कहकर पुकार बैठा था। वह तुरंत बोली थीं, 'तुम हिंदुस्तानियों के नाम ही मुश्किल होते हैं। मेरा तो बड़ा आसान नाम है, पमेला। कहा, पमेला। याद रहेगा न अब?'

मैंने स्वीकृति में ज़ोर से सिर हिला दिया था–हाँ, ख़ूब याद रहेगा।

मुझे चुप देख, वह बोलीं, 'इन दो कमरों में रहना मुझे ज़रा भी पसंद नहीं। तुम्हारे भैया कोई आरामदेह फ़्लैट खोजने गए हैं। न जाने कब तक लौटेंगे।'

सुनकर याद आ गया–जिस दिन भैया ने पमेला के हाथ में सगाई की अँगूठी पहनाई थी, उसी रात मुझसे कहा था, 'निर्मल, यह फ़्लैट तो अब हमें छोड़ना पड़ेगा।'

मैं चौंक गया था, 'क्यों, भैया?'

सुनकर भैया चुप रहे थे। फिर हारे-थके से, धीरे से बोले थे, 'मैंने तुम्हें बताया है। अगले महीने की नौ तारीख़ को मैं पमेला से विवाह कर रहा हूँ।'

मैं लज्जित हो उठा था, 'क्यों' शब्द का प्रयोग कर, मुझे भैया को दुखी नहीं करना चाहिए था। मेरी बुद्धि कहाँ चली गई थी, जो मैं पहले ही यह नहीं सोच सका कि एक अमरीकी लड़की, पति के भाई को अपने घर में बसाना पसंद नहीं करेगी।

मुझे चुप देख, भैया बोले थे, 'निर्मल ... आई एम सॉरी।'

मैंने अपने मन की सारी शक्ति बटोर, मुख पर हर्ष और उत्साह लाकर कहा था, 'वाह! इसमें अफ़सोस प्रकट करने की क्या बात है, भैया? मैं तो केवल यह सोच रहा था कि इस 'फ़्लैट' के लिए हमने जो काट्रैक्ट साइन किया था, उसका क्या होगा?'

बहुत वाद-विवाद के बाद, हाउसिंग-कोऑपरेटिव को पाँच सौ डॉलर जुर्माना देकर, हम उस फ़्लैट के मालिक बनने से छुटकारा पा सके थे।

फ़्लैट ख़ाली करते समय, एक बार मेरे मन में बात उठी थी–कमल के यहाँ आ जाने पर किराये आदि में बचत होगी। इस विचार से यह फ़्लैट ख़रीदा था। कमल यहाँ आ भी नहीं पाया और ...

और आज कमल की एक और चिट्ठी मेरी जेब में पड़ी है।

मार्गरेट मुझे बड़ी अच्छी लगती है। मुझे लगता है–उससे विवाह कर मैं सुखी रहूँगा। किंतु कमल और माँ और बाबूजी!

कंधे पर किसी का हाथ पड़ा। मैंने चौंककर देखा, मार्गरेट

थी।

'यहाँ क्यों खड़े हो? नाराज़ हो गए?'

'नहीं, नाराज़ी की तो कोई बात नहीं, बस की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।'

'मैं तो सिर्फ़ पाँच मिनट के लिए गई थी। पीटर को अपनी गर्लफ्रेंड के लिए एक उपहार ख़रीदना था।' वह सफ़ाई देते हुए बोली।

मैंने अपना हाथ उसकी कमर में डाल दिया, 'मैं क्या भला तुमसे नाराज़ हो सकता हूँ, डार्लिंग! एक ज़रूरी काम याद आ गया, इसलिए जा रहा हूँ।'

'ऐसा ज़रूरी काम है। दस मिनट भी नहीं रुक सकते? और मुझसे कहा करते हो कि मैं घड़ी की सुइयों के साथ चलती हूँ?'

हँसी आ गई। उसके साथ वापस कॉफ़ी मेज़ पर लौट आया।

कॉफ़ी के घूँट भरते, दो-चार बातों के बाद, मार्गरेट ऐसे बोली जैसे कोई भूली बात याद आ गई हो, 'निर्मल, जब कभी कोई परिचित मिलता है, मेरी ख़ाली उँगली देखकर पूछता है—इसमें अँगूठी कब पड़ेगी?'

मैंने प्याला धीरे से प्लेट पर रख दिया।

जिस प्रश्न की मैं प्रतीक्षा-सी कर रहा था, मन-ही-मन जिससे डर रहा था, वह आख़िर सामने आ ही गया।

मेरे सामने जो सुंदर लड़की बैठी है, यह विवाह के लिए तैयार है। जिस दिन मैं इसकी उँगली में अँगूठी पहनाऊँगा, यह मुझसे विवाह करना स्वीकार कर लेगी। विवाह हो जाने पर, अपने उस 'मैरिज कांट्रैक्ट' को बड़े यत्न से, कोहनूर जड़े किसी दस्तावेज़ की तरह सँभालकर रखेगी।

अपना 'मैरिज कांट्रैक्ट' सयत्न सूटकेस में रखते हुए एक दिन पमेला ने कहा था, 'हम लोगों के लिए यह कांट्रैक्ट बड़ा क़ीमती है निर्मल! हमारे समाज में कुँवारे रहने की अपेक्षा यह अधिक अच्छा माना जाता है कि किसी लड़की का विवाह होकर तलाक़ हो जाए। यदि विवाह सफल न हो तो हम लोगों को तलाक़ की पूरी सुविधाएँ हैं।'

पमेला की उँगली में उसके विवाह की अँगूठी थी। वह किसी सिक्के की तरह चमक रही थी। उस सिक्के की तरह, जिसे किसी मशीन में डालते ही, उसका मशीन से कांट्रैक्ट हो जाता है। जब तक सिक्का अपनी जगह रहता है, मशीन चलती रहती है। जब सिक्का फिसलने लगता है, मशीन बंद हो जाती है।

मैंने दृष्टि उठा, उसकी ओर देखा। कहा, 'मार्जी, तुम्हें मालूम है मेरे ऊपर बड़ी ज़िम्मेदारियाँ हैं (घर पर तीन अविवाहित बहनें हैं), एक छोटा भाई है, जिसकी सारी पढ़ाई बाक़ी है। मैं इस काबिल नहीं कि तुमसे विवाह कर सकूँ ... आई एम सॉरी, मार्ज!'

उसकी निगाहें झुक गईं।

दो पल बाद ही, उसने सिर उठाकर मेरी ओर देखा। कहा, 'निर्मल, आई एम ऑलसो सॉरी।'

धीरे, स्वस्थ भाव से उसने कॉफ़ी का प्याला ख़त्म किया, नेपकिन मेज़ पर रखा और उठ खड़ी हुई। अपना हाथ बढ़ाकर बोली, 'बाई, बाई।'

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया, 'मार्गरेट, क्या मैं आशा करूँ कि हमारी मैत्री में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ेगा और हम कभी-कभी मिलते रहेंगे?'

'क्यों नहीं, निर्मल! लेकिन तुम जानते हो, जैसे-जैसे दिन बीतते जाते हैं, उमर बढ़ती जाती है। आई एम नॉट गैटिंग यंगर, आई कैन नॉट एफोर्ड टु वेस्ट माई टाइम।'

'मैं समझता हूँ, मार्जी।'

'बाई, बाई।'

'बाई।'

वह चल दी। मैं देखता रहा, दरवाज़े के निकट वह रुकी नहीं। एक बार मुड़कर देखा नहीं। हाथ हिलाकर विदा नहीं ली।

खिड़की से मैं उसे सड़क पार करते देखता रहा—अभी वह लांड्रोमैट में घुसेगी। कपड़े निकालने को मशीन का ढक्कन उठाएगी, तो मशीन भी कुछ नहीं कहेगी। नि:शब्द रहेगी।

फिर कोई आएगा, और 'स्लॉट' में एक सिक्का डाल देगा और मशीन फिर से चलने लगेगी— घुर्र, घुर्र ...

मशीन की इन बंद आवाज़ों के बीच, ज़िंदगी के अंतराल का अंतिम छोर क्या मैंने पा लिया है?

या फिर कोई 'मार्गरेट' आएगी? और उसकी आँखों में बंद, घुटे प्रश्नों की चौंध ऐसी तीखी होगी कि मैं कमल को भूल जाऊँगा ... अपनी बहनों को भूल जाऊँगा ...माता-पिता और संबंधियों को भूल जाऊँगा।

नहीं-नहीं।

मैं ऐसा नहीं होने दूँगा ... नहीं होने दूँगा ... होने दूँगा ... नहीं ... उफ़।

मैं देख रहा हूँ—मेरी आँखें देख रही हैं। पीटर लांड्रोमैट में प्रवेश कर रहा है। उसकी आँखों में ज़रूरत है। जेब में सिक्के हैं और मशीन ख़ाली है और मेरे मन में ईर्ष्या का लेश भी नहीं है।

किंतु मेरा मस्तिष्क क्यों बेचैन है? अवचेतन में घुटी वह आवाज़ क्यों फिर से कसक रही है? तेरी एक ज़िंदगी पीछे है, एक कहीं आगे है और उन दोनों के बीच यह जो आज की ज़िंदगी है ...।

❐

वापसी

उषा प्रियंवदा

गजाधर बाबू ने कमरे में जमे सामान पर एक नज़र दौड़ाई–दो बक्स, डोलची, बाल्टी–'यह डिब्बा कैसा है, गनेशी?' उन्होंने पूछा। गनेशी बिस्तर बाँधता हुआ, कुछ गर्व, कुछ दु:ख, कुछ लज्जा से बोला, 'घरवाली ने साथ को कुछ बेसन के लड्डू रख दिए हैं। कहा, बाबूजी को पसंद थे, अब कहाँ हम ग़रीब लोग आपकी कुछ ख़ातिर कर पाएँगे!' घर की ख़ुशी में भी गजाधर बाबू ने एक विषाद का अनुभव किया, जैसे एक परिचित, स्नेही, आदरमय, सहज संसार से उनका नाता टूट रहा था।

'कभी-कभी हम लोगों की भी ख़बर लेते रहिएगा।' गनेशी बिस्तर में रस्सी बाँधता हुआ बोला।

'कभी कुछ ज़रूरत हो तो लिखना गनेशी! इस अगहन तक बिटिया की शादी कर दो।'

गनेशी ने अँगोछे के छोर से आँखें पोंछीं, 'अब आप लोग सहारा न देंगे, तो कौन देगा! आप यहाँ रहते तो शादी में कुछ हौसला रहता।'

गजाधर बाबू चलने को तैयार बैठे थे। रेलवे क्वार्टर का वह कमरा, जिसमें उन्होंने कितने ही वर्ष बिताए थे, उनका सामान हट जाने से कुरूप और नग्न लग रहा था। आँगन में रोपे पौधे भी जान-पहचान के लोग ले गए थे और जगह-जगह मिट्टी बिखरी हुई थी। पर पत्नी, बाल-बच्चों के साथ रहने की कल्पना में यह बिछोह एक दुर्बल की तरह उठकर विलीन हो गया।

गजाधर बाबू ख़ुश थे, बहुत ख़ुश। पैंतीस साल की नौकरी के बाद वह रिटायर होकर जा रहे थे। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था, उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार

उषा प्रियंवदा उन कथाकारों में हैं, जिनके उल्लेख के बिना हिंदी साहित्य का इतिहास पूरा नहीं होता। कानपुर में जन्मी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय से अँग्रेज़ी में पी-एच॰डी॰, उषा जी फुलब्राइट स्कॉलरशिप पर 1967 में अमेरिका आईं और फिर यहीं बस गईं। लेकिन, मातृभाषा हिंदी से लगाव कुछ यूँ कि मेडिसन विश्व विद्यालय, विन्स्कोसिन में अँग्रेज़ी की प्रोफ़ेसर उषा प्रियंवदा जी की लेखनी हमेशा हिंदी में ही चली। उनकी लेखनी से लगातार हिंदी साहित्य का कोश समृद्ध होता रहा है। उनकी प्रमुख कृतियाँ हैं; कहानी-संग्रह– ज़िंदगी और गुलाब के फूल, एक कोई दूसरा, मेरी प्रिय कहानियाँ; उपन्यास–पचपन खंभे लाल दीवारें, रुकोगी नहीं राधिका, शेष यात्रा और अंतर्वंशी; कई पुस्कारों से सम्मानित, 'वापसी' को अपनी प्रतिनिधि कहानी मानने वाली उषा की कलम अभी भी चल रही है और उनके पाठकों और प्रशंसकों की उनसे उम्मीदें कायम हैं।

के साथ रह सकेंगे। इसी आशा के सहारे वह अपने अभाव का बोझ ढो रहे थे। संसार की दृष्टि में उनका जीवन सफल कहा जा सकता था। उन्होंने शहर में एक मकान बनवा लिया था, बड़े लड़के अमर और लड़की कांति की शादियाँ कर दी थीं, दो बच्चे ऊँची कक्षाओं में पढ़ रहे थे। गजाधर बाबू स्वभाव से बहुत स्नेही व्यक्ति थे और स्नेह के आकांक्षी भी। जब परिवार साथ था, ड्यूटी से लौटकर बच्चों से हँसते-बोलते, पत्नी से कुछ मनोविनोद करते, उन सबके चले जाने से उनके जीवन में गहन सूनापन भर उठता। ख़ाली क्षणों में उनसे घर में टिका न जाता। कवि-प्रकृति के न होने पर भी उन्हें पत्नी की स्नेहपूर्ण बातें याद आती रहतीं। दोपहर में गर्मी होने पर भी, दो बजे तक आग जलाए रहती और उनके स्टेशन से वापस आने पर गरम-गरम रोटियाँ सेकती। उनके खा चुकने और मना करने पर भी थोड़ा-सा कुछ और थाली में परोस देती, और बड़े प्यार से आग्रह करती। जब वह थके-हारे बाहर से आते, तो उनकी आहट पा वह रसोई के द्वार पर निकल आती और उसकी सलज्ज आँखें मुस्कुरा उठतीं। गजाधर बाबू को तब हर छोटी बात याद आती और वह उदास हो उठते... अब कितने वर्षों बाद वह अवसर आया था, जब वह फिर उसी स्नेह और आदर के मध्य रहने जा रहे थे।

टोपी उतारकर गजाधर बाबू ने चारपाई पर रख दी, जूते खोलकर नीचे खिसका दिए, अंदर से रह-रहकर क़हक़हों की आवाज़ आ रही थी। इतवार का दिन था और उनके सब बच्चे इकट्ठे होकर नाश्ता कर रहे थे। गजाधर बाबू के सूखे चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान आ गई, उसी तरह मुस्कुराते हुए वह बिना खाँसे अंदर चले आए। उन्होंने देखा कि नरेंद्र कमर पर हाथ रखे शायद गत रात्रि की फ़िल्म में देखे गए किसी नृत्य की नक़ल कर रहा था और बसंती हँस-हँसकर दुहरी हो रही थी। अमर की बहू को अपने तन-बदन, आँचल या घूँघट का कोई होश न था और

वह उन्मुक्त रूप से हँस रही थी। गजाधर बाबू को देखते ही नरेंद्र धप से बैठ गया और चाय का प्याला उठाकर मुँह से लगा लिया। बहू को होश आया और उसने झट से माथा ढक लिया, केवल बसंती का शरीर रह-रहकर हँसी दबाने के प्रयत्न में हिलता रहा।

गजाधर बाबू ने मुस्कुराते हुए उन लोगों को देखा। फिर कहा, 'क्यों नरेंद्र, क्या नक़ल हो रही थी?'

'कुछ नहीं बाबूजी!' नरेंद्र ने सिटपिटकर कहा। गजाधर बाबू ने चाहा था कि वह भी इस मनोविनोद में भाग लेते, पर उनके आते ही जैसे सब कुंठित हो चुप हो गए, उससे उनके मन में थोड़ी-सी खिन्नता उपज आई। बैठते हुए बोले, 'बसंती, चाय मुझे भी देना। तुम्हारी अम्मा की पूजा अभी चल रही है क्या?'

बसंती ने माँ की कोठरी की ओर देखा, 'अभी आती ही होंगी,' और प्याले में उनके लिए चाय छानने लगी। बहू चुपचाप पहले ही चली गई थी, अब नरेंद्र भी चाय का आखिरी घूँट पीकर उठ खड़ा हुआ। केवल बसंती, पिता के लिहाज में, चौके में बैठी माँ की राह देखने लगी। गजाधर बाबू ने एक घूँट चाय पी ली, फिर कहा, 'बिट्टी, चाय तो फीकी है।'

'लाइए, चीनी और डाल दूँ।' बसंती बोली।

'रहने दो, तुम्हारी अम्मा जब आएगी, तभी पी लूँगा।'

थोड़ी देर में उनकी पत्नी हाथ में अर्घ्य का लोटा लिए निकलीं और अशुद्ध स्तुति कहते हुए तुलसी में डाल दिया। उन्हें देखते ही बसंती भी उठ गई। पत्नी ने आकर गजाधर बाबू को देखा और कहा, 'अरे, आप अकेले बैठे हैं—ये सब कहाँ गए?' गजाधर बाबू के मन में फाँस-सी करक उठी, 'अपने-अपने काम में लग गए हैं, आख़िर बच्चे ही हैं।'

पत्नी आकर चौके में बैठ गई; उन्होंने नाक-भौं चढ़ाकर चारों ओर जूठे बर्तनों को देखा। फिर कहा, 'सारे बर्तन जूठे पड़े हैं। इस घर में धरम-करम कुछ नहीं। पूजा करके सीधे चौके में घुसो।' फिर उन्होंने नौकर को पुकारा, जब उत्तर न मिला तो एक बार और उच्च स्वर में, फिर पति की ओर देखकर बोली, 'बहू ने भेजा होगा बाज़ार।' और एक लंबी साँस लेकर चुप हो गई।

गजाधर बाबू बैठकर चाय और नाश्ते का इंतज़ार करते रहे। उन्हें अचानक ही गनेशी की याद आ गई। रोज़ सुबह, पैसेंजर आने से पहले वह गरम-गरम पूरियाँ और जलेबी बनाता था। गजाधर बाबू जब तक उठकर तैयार होते, उनके लिए जलेबियाँ और चाय लाकर रख देता था। चाय भी कितनी बढ़िया, काँच के गिलास में ऊपर तक भरी लबालब, पूरे ढाई चम्मच चीनी और गाढ़ी मलाई। पैसेंजर भले ही रानीपुर लेट पहुँचे, गनेशी ने चाय पहुँचाने में देर नहीं की। क्या मजाल कि कभी उससे कुछ कहना पड़े।

पत्नी का शिकायत-भरा स्वर सुन उनके विचारों में व्याघात पहुँचा। वह कह रही थीं, 'सारा दिन इसी खिच-खिच में निकल जाता है। इस गृहस्थी का धंधा पीटते-पीटते उमर बीत गई। कोई ज़रा हाथ भी नहीं बँटाता।'

'बहू क्या करती है?' गजाधर बाबू ने पूछा।

'पड़ी रहती है। बसंती को तो, फिर कहो कि कालेज जाना होता है।'

गजाधर बाबू ने जोश में आकर बसंती को आवाज़ दी। बसंती भाभी के कमरे से निकली तो गजाधर बाबू ने कहा, 'बसंती, आज से शाम का खाना बनाने की जिम्मेदारी तुम पर है। सुबह का भोजन तुम्हारी भाभी बनाएगी।'

बसंती मुँह लटकाकर बोली, 'बाबूजी, पढ़ना भी तो होता है।'

गजाधर बाबू ने प्यार से समझाया, 'तुम सुबह पढ़ लिया करो। तुम्हारी माँ बूढ़ी हुई, उनके शरीर में अब वह शक्ति नहीं बची है। तुम हो, तुम्हारी भाभी हैं, दोनों को मिलकर काम में हाथ बँटाना चाहिए।'

बसंती चुप रह गई। उसके जाने के बाद उसकी माँ ने धीरे से कहा, 'पढ़ने का तो बहाना है। कभी जी नहीं लगता, लगे कैसे? शीला से ही फुरसत नहीं, बड़े-बड़े लड़के हैं उस घर में, हर वक़्त वहाँ घुसा रहना मुझे नहीं सुहाता। मना करूँ तो सुनती नहीं।'

नाश्ता कर गजाधर बाबू बैठक में चले गए। घर छोटा था और ऐसी अवस्था हो चुकी थी कि उसमें गजाधर बाबू के रहने के लिए कोई स्थान न बचा था। जैसे किसी मेहमान के लिए कुछ अस्थाई प्रबंध कर दिया जाता है, उसी प्रकार बैठक में कुरसियों को दीवार से सटाकर बीच में गजाधर बाबू के लिए पतली-सी चारपाई डाल दी गई थी। गजाधर बाबू उस कमरे में पड़े-पड़े, कभी-कभी अनायास ही, इस अस्थायित्व का अनुभव करने लगते। उन्हें याद हो आती उन रेलगाड़ियों की, जो आतीं और थोड़ी देर रुककर किसी और लक्ष्य की ओर चली जातीं।

घर छोटा होने के कारण बैठक में ही अब अपना प्रबंध किया था। उनकी पत्नी के पास अंदर एक छोटा कमरा अवश्य था, पर वह एक ओर अचारों के मर्तबान, दाल, चावल के कनस्तर और घी के डिब्बों से घिरा था; दूसरी ओर पुरानी रज़ाइयाँ, दरियों में लिपटी और रस्सी से बँधी रखी थीं; उसके पास एक बड़े से टीन के बक्स में घर-भर के गरम कपड़े थे। बीच में एक अलगनी बँधी हुई थी, जिस पर प्रायः बसंती के कपड़े लापरवाही से पड़े रहते थे। वह भरसक उस कमरे में नहीं जाते थे। घर का दूसरा कमरा अमर और उसकी बहू के पास था, तीसरा कमरा, जो सामने की ओर था, बैठक था। गजाधर

बाबू के आने से पहले उसमें अमर की ससुराल से आए बेंत की तीन कुर्सियों का सेट पड़ा था, कुरसियों पर नीली गद्दियाँ और बहू के हाथों के कढ़े कुशन थे।

जब कभी उनकी पत्नी को कोई लंबी शिकायत करनी होती, तो अपनी चटाई बैठक में डाल पड़ जाती थीं। वह एक दिन चटाई लेकर आ गईं। गजाधर बाबू ने घर-गृहस्थी की बातें छेड़ीं, वह घर का रवैया देख रहे थे। बहुत हल्के-से उन्होंने कहा कि अब हाथ में पैसा कम रहेगा, कुछ ख़र्च कम होना चाहिए।

'सभी ख़र्च तो वाजिब-वाजिब हैं, किसका पेट काटूँ? यही जोड़-गाँठ करते-करते बूढ़ी हो गई, न मन का पहना, न ओढ़ा।'

गजाधर बाबू ने आहत, विस्मित दृष्टि से पत्नी को देखा। उनसे अपनी हैसियत छिपी न थी। उनकी पत्नी तंगी का अनुभव कर उसका उल्लेख करतीं, यह स्वाभाविक था, लेकिन उनमें सहानुभूतिपूर्ण अभाव गजाधर बाबू को बहुत खटका। उनसे यदि राय-बात की जाती कि प्रबंध कैसे हो, तो उन्हें चिंता कम, संतोष अधिक होता। लेकिन उनसे तो केवल शिकायत की जाती थी, जैसे परिवार की सब परेशानियों के लिए वह ज़िम्मेदार थे।

'तुम्हें किस बात की कमी है अमर की माँ– घर में बहू है, लड़के-बच्चे हैं; सिर्फ़ रुपए से ही आदमी अमीर नहीं होता।' गजाधर बाबू ने कहा और कहने के साथ ही अनुभव किया। यह उनकी आंतरिक अभिव्यक्ति थी। ऐसी कि उनकी पत्नी नहीं समझ सकती। 'हाँ, बड़ा सुख है न बहू से। आज रसोई करने गई है, देखो क्या होता है?' कहकर पत्नी ने आँखें मूँदीं और सो गईं। गजाधर बाबू बैठे हुए पत्नी को देखते रह गए। यही थी क्या उनकी पत्नी, जिसके हाथों के कोमल स्पर्श, जिसकी मुस्कान की याद में उन्होंने संपूर्ण जीवन काट दिया था? उन्हें लगा कि वह लावण्यमयी युवती जीवन की राह में कहीं खो गई और उसकी जगह आज जो स्त्री है, वह उनके मन और प्राणों के लिए नितांत अपरिचिता है। गाढ़ी नींद में डूबी उनकी पत्नी का भारी-सा शरीर बहुत बेडौल और कुरूप लग रहा था, चेहरा श्रीहीन और रूखा था। गजाधर बाबू देर तक निस्संग दृष्टि से पत्नी को देखते रहे और फिर लेटकर छत की ओर ताकने लगे।

अंदर कुछ गिरा और उनकी पत्नी हड़बड़ाकर उठ बैठी, 'लो बिल्ली ने कुछ गिरा दिया शायद', और वह अंदर भागीं। थोड़ी देर में लौटकर आईं तो उनका मुँह फूला-फूला हुआ था, 'देखा बहू को, चौका खुला छोड़ आई, बिल्ली ने दाल की पतीली गिरा दी। सभी तो खाने को हैं, अब क्या खिलाऊँगी?' वह साँस लेने को रुकीं और बोलीं, 'एक तरकारी और चार पराँठे बनाने में सारा डिब्बा घी उड़ेलकर रख दिया। ज़रा-सा दर्द नहीं है, कमानेवाला हाड़ तोड़े और यहाँ चीज़ें लुटें। मुझे तो मालूम था कि यह सब काम किसी के बस का नहीं है।'

गजाधर बाबू को लगा कि पत्नी कुछ और बोलेंगी तो उनके कान झनझना उठेंगे। ओठ भींच, करवट लेकर उन्होंने पत्नी की ओर पीठ कर ली।

□

रात का भोजन बसंती ने जान-बूझकर ऐसा बनाया था कि कौर तक निगला न जा सके। गजाधर बाबू चुपचाप खाकर उठ गए, पर नरेंद्र थाली सरकाकर उठ खड़ा हुआ और बोला, 'मैं ऐसा खाना नहीं खा सकता।'

बसंती तुनककर बोली, 'तो न खाओ, कौन तुम्हारी खुशामद करता है।'

'तुमसे खाना बनाने को कहा किसने था?' नरेंद्र चिल्लाया।

'बाबूजी ने।'

'बाबूजी को बैठे-बैठे यही सूझता है।'

बसंती को उठाकर माँ ने नरेंद्र को मनाया और अपने हाथ से कुछ बनाकर खिलाया। गजाधर बाबू ने बाद में पत्नी से कहा, 'इतनी बड़ी लड़की हो गई और उसे खाना बनाने का शऊर नहीं आया!'

'अरे आता सब कुछ है, करना नहीं चाहती।' पत्नी ने उत्तर दिया। अगली शाम माँ को रसोई में देख, कपड़े बदलकर बसंती बाहर आई, तो बैठक से गजाधर बाबू ने टोक दिया, 'कहाँ जा रही हो?'

'पड़ोस में, शीला के घर।' बसंती ने कहा।

'कोई ज़रूरत नहीं है, अंदर जाकर पढ़ो।' गजाधर बाबू ने कड़े स्वर में कहा। कुछ देर अनिश्चित खड़े रहकर बसंती अंदर चली गई। गजाधर बाबू शाम को रोज़ टहलने चले जाते थे, लौटकर आए तो पत्नी ने कहा, 'क्या कह दिया बसंती से? शाम से मुँह लपेटे पड़ी है। खाना भी नहीं खाया।'

गजाधर बाबू खिन्न हो आए। पत्नी की बात का उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने मन में निश्चय कर लिया कि बसंती की शादी जल्दी ही कर देनी है। उस दिन के बाद बसंती पिता से बची-बची रहने लगी। जाना होता तो पिछवाड़े से जाती। गजाधर बाबू ने दो-एक बार पत्नी से पूछा तो उत्तर मिला, 'रूठी हुई है।' गजाधर बाबू को और रोष हुआ। लड़की के इतने मिज़ाज, जाने को रोक दिया तो पिता से बोलेगी नहीं! फिर उनकी पत्नी ने ही सूचना दी कि अमर अलग रहने की सोच रहा है।

'क्यों?' गजाधर बाबू ने चकित होकर पूछा।

पत्नी ने साफ़-साफ़ उत्तर नहीं दिया। अमर और उसकी बहू की शिकायतें बहुत थीं। उनका कहना था कि गजाधर बाबू

हमेशा बैठक में ही पड़े रहते हैं, कोई आने-जाने वाला हो तो कहीं बिठाने की जगह नहीं। अमर को अब भी छोटा-सा समझते थे और मौके-बेमौके टोक देते थे। बहू को काम करना पड़ता था और सास जब-तब फूहड़पन पर ताने देती रहती थीं। 'हमारे आने के पहले भी कभी ऐसी बात हुई थी?' गजाधर बाबू ने पूछा। पत्नी ने सिर हिलाकर जताया कि नहीं। पहले अमर घर मालिक बनकर रहता था, बहू को कोई रोक-टोक न थी, अमर के दोस्तों का प्राय: यहीं अड्डा जमा रहता था और अंदर से नाश्ता-चाय तैयार होकर जाता रहता था। बसंती को भी वही अच्छा लगता था।

गजाधर बाबू ने बहुत धीरे-से कहा, 'अमर से कहो, जल्दबाज़ी की कोई ज़रूरत नहीं है।'

अगले दिन वह सुबह घूमकर लौटे तो उन्होंने पाया कि बैठक में उनकी चारपाई नहीं है। अंदर आकर पूछने ही वाले थे कि उनकी दृष्टि रसोई के अंदर बैठी पत्नी पर पड़ी। उन्होंने यह कहने को मुँह खोला कि बहू कहाँ; पर कुछ याद कर चुप हो गए। पत्नी की कोठरी में झाँका तो अचार, रजाइयों और कनस्तरों के मध्य अपनी चारपाई लगी पाई। गजाधर बाबू ने कोट उतारा और कहीं टाँगने को दीवार पर नज़र दौड़ाई। फिर उसे मोड़कर अलगनी के कुछ कपड़े खिसकाकर एक किनारे टाँग दिया। कुछ खाए बिना ही अपनी चारपाई पर लेट गए। कुछ भी हो, तन आख़िरकार बूढ़ा ही था। सुबह-शाम कुछ दूर टहलने अवश्य चले जाते, पर आते-जाते थक उठते थे। गजाधर बाबू को अपना बड़ा-सा, खुला हुआ क्वार्टर याद आ गया। निश्चिंत जीवन, सुबह पैसेंजर ट्रेन आने पर स्टेशन की चहल-पहल, चिर-परिचित चेहरे और पटरी पर रेल के पहियों की खट्-खट्, जो उनके लिए मधुर संगीत की तरह थी। तूफ़ान और डाकगाड़ी के इंजनों की चिंघाड़ उनकी अकेली रातों की साथी थी। सेठ रामजीमल के मिल के कुछ लोग कभी-कभी पास आ बैठते, वही उनका दायरा था, वही उनके साथी। वह जीवन अब उन्हें एक खोई निधि-सा प्रतीत हुआ। उन्हें लगा कि वह ज़िंदगी द्वारा ठगे गए हैं। उन्होंने जो कुछ चाहा, उसमें से उन्हें एक बूँद भी न मिली।

लेटे हुए वह घर के अंदर से आते विविध स्वरों को सुनते रहे। बहू और सास की छोटी-सी झड़प, बाल्टी पर खुले नल की आवाज़, रसोई के बर्तनों की खटपट और उसी में दो गौरैयों का वार्तालाप—और अचानक ही उन्होंने निश्चय कर लिया कि अब घर की किसी बात में दख़ल न देंगे। यदि गृहस्वामी के लिए पूरे घर में एक चारपाई की जगह यहीं है, तो यहीं पड़े रहेंगे। अगर कहीं और डाल दी गई तो वहाँ चले जाएँगे। यदि बच्चों के जीवन में उनके लिए कहीं स्थान नहीं, तो अपने ही घर में परदेसी की तरह रहेंगे और उस दिन के बाद सचमुच गजाधर बाबू कुछ नहीं बोले। नरेंद्र रुपए माँगने आया तो बिना कारण पूछे उसे रुपए दे दिए—बसंती काफ़ी अँधेरा हो जाने के बाद भी पड़ोस में रही तो भी उन्होंने कुछ नहीं कहा—पर उन्हें सबसे बड़ा ग़म यह था कि उनकी पत्नी ने भी उनमें कुछ परिवर्तन लक्ष्य नहीं किया। वह मन-ही-मन कितना भार ढो रहे हैं, इससे वह अनजान ही बनी रहीं। बल्कि उन्हें पति के घर के मामले में हस्तक्षेप न करने के कारण शांति ही थी। कभी-कभी कह भी उठतीं, 'ठीक ही है। आप बीच में न पड़ा कीजिए, बच्चे बड़े हो गए हैं, हमारा जो कर्त्तव्य था, कर रहे हैं, पढ़ा रहे हैं। शादी कर देंगे।

गजाधर बाबू ने आहत दृष्टि से पत्नी को देखा। उन्होंने अनुभव किया कि वह पत्नी व बच्चों के लिए केवल धनोपार्जन के निमित्त मात्र हैं। जिस व्यक्ति के अस्तित्व से पत्नी माँग में सिंदूर डालने की अधिकारी है, समाज में उसकी प्रतिष्ठा है, उसके सामने वह दो वक़्त भोजन की थाली रख देने से सारे कर्त्तव्यों से छुट्टी पा जाती है। वह घी और चीनी के डिब्बों में इतनी रमी हुई है कि अब वही उनकी संपूर्ण दुनिया बन गई है। गजाधर बाबू उनके जीवन के केंद्र नहीं हो सकते, उन्हें तो अब बेटी की शादी के लिए भी उत्साह बुझ गया। किसी बात में हस्तक्षेप न करने के निश्चय के बाद भी उनका अस्तित्व उस वातावरण का एक भाग न बन सका। उनकी उपस्थिति उस घर में ऐसी असंगत लगने लगी थी, जैसे सजी हुई बैठक में उनकी चारपाई थी। उनकी सारी ख़ुशी एक गहरी उदासीनता में डूब गई।

□

इतने सब निश्चयों के बावजूद गजाधर बाबू एक दिन बीच में दखल दे बैठे। पत्नी स्वभावानुसार नौकर की शिकायत कर रही थीं, 'कितना कामचोर है, बाज़ार

की हर चीज़ में पैसा बनाता है, खाने बैठता है, तो खाता ही चला जाता है।' गजाधर बाबू को बराबर यह महसूस होता रहता था कि उनके घर का रहन-सहन और खर्च उनकी हैसियत से कहीं ज़्यादा है। पत्नी की बात सुनकर लगा कि नौकर का ख़र्च बिल्कुल बेकार है। छोटा-मोटा काम है, घर में तीन मर्द हैं, कोई-न-कोई कर ही देगा। उन्होंने उसी दिन नौकर का हिसाब कर दिया। अमर दफ़्तर से आया तो नौकर को पुकारने लगा। अमर की बहू बोली, 'बाबूजी ने नौकर छुड़ा दिया है।'

'क्यों?'

'कहते हैं ख़र्च बहुत है।'

यह वार्तालाप बहुत सीधा-सा था, पर जिस टोन में बहू बोली, गजाधर बाबू को खटक गया। उस दिन जी भारी होने के कारण गजाधर बाबू टहलने नहीं गए थे। आलस्य में उठकर बत्ती भी नहीं जलाई। इस बात से बेख़बर नरेंद्र माँ से कहने लगा, 'अम्मा, तुम बाबूजी से कहतीं क्यों नहीं? बैठे-बिठाए कुछ नहीं तो नौकर ही छुड़ा दिया। अगर बाबूजी यह समझें कि मैं साइकिल पर गेहूँ रख आटा पिसाने जाऊँगा, तो मुझसे यह नहीं होगा।' 'हाँ अम्मा', बसंती का स्वर था, 'मैं कालेज भी जाऊँ और लौटकर घर में झाड़ू भी लगाऊँ, यह मेरे बस की बात नहीं है।'

'बूढ़े आदमी हैं', अमर भुनभुनाया, 'चुपचाप पड़े रहें। हर चीज़ में दख़ल क्यों देते हैं?' पत्नी ने बड़े व्यंग्य से कहा, 'और कुछ नहीं सूझा तो तुम्हारी बहू को चौके में भेज दिया। वह गई तो पंद्रह दिन का राशन पाँच दिन में बनाकर रख दिया।' बहू कुछ कहे, इससे पहले वह चौके में घुस गईं। कुछ देर में अपनी कोठरी में आईं और बिजली जलाई तो गजाधर बाबू को लेटे देख बड़ी सिटपिटाईं। गजाधर बाबू की मुखमुद्रा से वह उनके भावों का अनुमान न लगा सकीं। वह चुप, आँखें बंद किए लेटे रहे।

□

गजाधर बाबू चिट्ठी हाथ में लिए अंदर आए और पत्नी को पुकारा। वह भीगे हाथ लिए निकली और आँचल से पोंछती हुई पास आ खड़ी हुई। गजाधर बाबू ने बिना किसी भूमिका के कहा, 'मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गई है; ख़ाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वही अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था।' फिर कुछ रुककर जैसे बुझी हुई आग में एक चिंगारी चमक उठे, उन्होंने धीमे स्वर में कहा, 'मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। ख़ैर, परसों जाना है। तुम भी चलोगी?' 'मैं?' पत्नी ने सकपकाकर कहा, 'मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की....'

बात बीच में काटकर गजाधर बाबू ने हताश स्वर में कहा, 'ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था।' और गहरे मौन में डूब गए।

□

नरेंद्र ने बड़ी तत्परता से बिस्तर बाँधा और रिक्शा बुला लाया। गजाधर बाबू का टीन का बक्स और पतला-सा बिस्तर उस पर रख दिया गया। नाश्ते के लिए लड्डू और मठरी की डलिया हाथ में लिए गजाधर बाबू रिक्शे पर बैठ गए। दृष्टि उन्होंने अपने परिवार पर डाली। फिर दूसरी ओर देखने लगे और रिक्शा चल पड़ा। उनके जाने के बाद सब अंदर लौट आए, बहू ने अमर से पूछा, 'सिनेमा ले चलिएगा न?' बसंती ने उछलकर कहा, 'भैया, हमें भी।'

गजाधर बाबू की पत्नी सीधे चौके में चली गईं। बची हुई मठरियों को कटोरदान में रखकर अपने कमरे में लाईं और कनस्तरों के पास रख दिया, फिर बाहर आकर कहा, 'अरे नरेंद्र, बाबूजी की चारपाई कमरे से निकाल दे। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।'

❒ 1219 Shorewood Vlvd
Madison
WI 53705-2265 USA

श्री रामअवतार गुप्त मुज़्तर का निधन

प्रसिद्ध शायर श्री रामअवतार गुप्त मुज़्तर का देहांत 10 अगस्त 2010 को हृदयाघात से हो गया। बुलंदशहर के परगना जहाँगीराबाद के गाँव साँखनी के एक वैश्य परिवार में जन्म हुआ। उत्तर रेलवे के संडीला रेलवे स्टेशन से रोज़ी-रोटी शुरू करने के बाद नजीबाबाद रेलवे स्टेशन से टी॰सी॰ पद से सेवानिवृत्त हुए और यहीं अपना स्थायी आवास बना लिया।

मुज़्तर जी के दो काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं– सीपियों में समंदर तथा सफ़री-ए-आखरे शब तीसरा संकलन भी शीघ्र प्रकाशित हो रहा है।

जनपद की शान श्री रामावतार गुप्ता मुज़्तर के निधन पर 'शोध-दिशा' परिवार अपनी हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

बहुत अच्छा आदमी

रमेशचंद धुस्सा

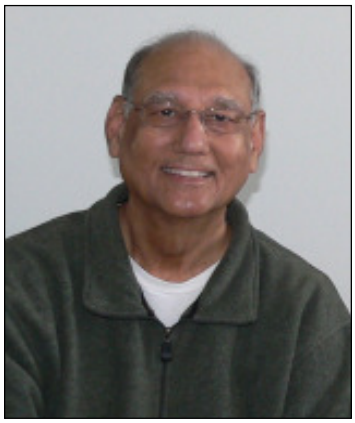

जन्म 14 मई, दुमका (झारखंड) में; एम॰ए॰ (भूगोल) पटना यूनिवर्सिटी, एम॰ए॰ (भूगोल) यूनिवर्सिटी ऑफ़ अक्रोन, ओहायो, यू॰एस॰ए॰, पी-एच॰डी॰ (भूगोल) केंट स्टेट यूनिवर्सिटी, ओहायो; 1974 से अमेरिका में, अमेरिका-आगमन से पहले हिंदी साहित्य जगत में सुपरिचित नाम। मूलत: कहानीकार, साठ एवं सत्तर के दशक की हिंदी की सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं 'कहानी', 'सारिका', 'नई कहानियाँ', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' आदि में कहानियाँ प्रकाशित एवं चर्चित, कई कहानियों का हिंदी से इतर (गुजराती, उर्दू, मगही, अँग्रेज़ी) भाषाओं में अनुवाद भी। फिर लंबे समय तक गुमनाम। इधर कुछ वर्षों से पुन: क़लम चल पड़ी है; बहुत अच्छा आदमी (कहानी-संग्रह), छिटपुट कहानियाँ।

उसे लगा, उसकी नींद टूट गई है। पता नहीं क्यों उसे अपने चारों ओर का वातावरण बहुत सुखद और आरामदेय लगा। सोने के पहले वातावरण में इतनी मधुरता एवं इतनी सुखानुभूति की लहर नहीं थी।

उसने आँखें मलीं और वह अपने चारों ओर अलस भाव से देखने लगा। उसने देखा, वह जिस कमरे में है, वह लोहे की दीवारों का बना हुआ है। बड़ा आश्चर्य हुआ उसे। सोने से पहले तो ये मिट्टी की दीवारें थीं और उनमें कई-कई सूराख़ बन गए थे, जिनमें से होकर बाहर की लू या सर्दियों में बड़ी तीखी बर्फ़ानी ठंडी हवा अंदर आकर उसे तकलीफ़ दिया करती थी। पर, इस समय उसे बड़ा आराम मिल रहा था। बाहर की न तो ठंडी हवा और न ही लू अंदर आकर उसे कष्ट पहुँचा सकती थी। उसे लगा, वह बाहर की किसी भी प्राकृतिक आपदा से सुरक्षित है। उसकी दृष्टि छत की ओर गई। छत पूरी तरह लोहे की बनी हुई थी। मज़बूत और दृढ़। उसने सोचा, कहाँ वह कपड़े की छत और कहाँ यह फ़ौलाद की छत। कपड़े की छत से वर्षा के दिनों में पानी टपकता था। धूप की गर्मी भी तकलीफ़ देती थी। शीत के दिनों में भी पाला टपकता था। कितना अच्छा लग रहा था उसे इस वक़्त। इन सारी वातावरणजन्य विषमताओं के कष्ट से वह मुक्त है। उसे अपने भाग्य पर संतोष ही नहीं, गर्व भी हो रहा है। भाग्य ने उसे कितना सुरक्षित बना दिया है। कितना सुखद है इस क़िलेनुमा कमरे के अंदर और फिर बाहर इर्द-गिर्द आते-जाते लोगों की निगाहों में भी वह कितना अलग-अलग और ऊँचा लग रहा है। ऐसा वह मन-ही-मन अनुभव करता और आत्मगौरव की भावना से ओत-प्रोत हो जाता। उसने आँखें मूँदकर आत्मसंतुष्टि के भाव से अपने परिवेश की ओर देखा। लोगों पर उसे मन-ही-मन दया आने लगी। अपने व्यक्तित्व की गरिमा का रसास्वादन करने लगा! कितना भाग्यशाली है वह! कितना सुख है उसे! और उसने कारुणिक दृष्टि से बाहर आते-जाते लोगों की ओर देखा। कितने अभागे हैं वे, जिन्हें धूप, लू, वर्षा, शीत, तीखी हवा, तूफ़ान आदि के बीच जीना पड़ रहा है और वे ऐसा अनुभव करते हैं कि वे बहुत सुखी हैं। दावा करते हैं कि वे प्राकृतिक जीवन जी रहे हैं और प्रकृति के बीच रहते हैं। प्रकृति के हर बदलते हुए रूप से उनका सान्निध्य है और उसका आनंद उन्हें मिलता है। इन विचारों के साथ उसे लगने लगा कि वे ढोंगी हैं। पाखंडी कहीं के!

इसी बीच उसने देखा, लोहे की पारदर्शी दीवार पर एक वाक्य आकर चिपक गया है– 'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' उसने इसे बड़े गर्व से पढ़ा। बड़ा सुख मिला था उसे। तो लोग उसके बारे में समझते हैं कि वह एक बहुत अच्छा आदमी है, जो न शराब पीता है और न ही स्त्रियों की ओर दृष्टि उठाकर कभी देखता ही है। और तो और, कभी सिगरेट तक भी नहीं पीता। और संभवत: यही कारण है कि वह इतने सुरक्षित मकान में इतना सुरक्षित है। और सारे लोगों से अधिक सुरक्षित। इसीलिए तो उसके कमरे की दीवार पर आकर चिपक गया है– 'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' उसे बड़ा आत्मसंतोष और गौरव का बोध हुआ, अपने को औरों से अलग और उनसे ऊपर स्थित होने का बोध।

थोड़ी देर के बाद उसने देखा, पास के रास्ते से कुछ नवयुवा जोड़े बाँहों में बाँहें डाले हँसते-खिलखिलाते हुए गुज़र रहे हैं। उसने यह भी देखा कि उनमें से कुछ जोड़े उसके मकान की ओर उँगलियों से इशारा करते हुए अपने साथियों को बतला रहे हैं–'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' और एक-दूसरे को चूमते हुए, खिलखिलाकर हँसते हुए आगे बढ़ जाते हैं। उनकी खिलखिलाहट जैसे उसका मज़ाक उड़ा रही थी। उसे अजीब-सा लगा। फिर उसने देखा, अचानक दो-तीन बहुत बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा–'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' का लेबिल आकर उसके मकान के लोहे की पारदर्शी दीवार से

चिपक रहा है। इन लेबलों के चिपकने से कमरे में रोशनी का आना कुछ कम हो गया है। उसे कुछ अच्छा नहीं लगा। बाहर से प्राकृतिक प्रकाश के अंदर आने में 'बहुत अच्छा आदमी' का लेबल बाधक हो रहा था।

और, अचानक उसने महसूस किया, जैसे कमरे की हवा अब कुछ गर्म हो चली है और बाहर की स्वच्छ ताज़ा हवा के अंदर नहीं आने से कमरे के अंदर की हवा में अब वह पहले वाली मधुरता, हल्कापन और ताज़गी नहीं रह गई है। उसे साँस लेने में कुछ कठिनाई का अहसास होने लगा था। इसी बीच 'बहुत अच्छा आदमी' के और कई सारे लेबल एक के बाद एक आकर उसके कमरे की चारों ओर की दीवारों पर चिपकने लगे। बाहर से प्रकाश का आना और भी कम हो गया। उसे अकुलाहट महसूस होने लगी। वह बिस्तर पर उठकर बैठ गया। कुछ बेचैनी का अनुभव करने लगा। फिर पलंग से उतरकर फ़र्श पर खड़ा हो गया।

उसकी दृष्टि बाहर की ओर गई। उसने देखा, शारदा उसके मकान की ओर आ रही है। हाँ, उसी की ओर आ रही है। उसे बड़ी ख़ुशी हुई। उसे राहत-सी मिली। उसने चिल्लाकर कहा– 'शारदा, मुझे निकाल लो।' लेकिन शारदा के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी थी। जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं था। उसने संभवत: कुछ देखा भी नहीं था। शारदा संभवत: उसकी बेचैनी देख नहीं पाई थी। वह न तो बाहर से उसे देख पाई थी और न ही सुन पाई थी। वह उसके मकान के पास आकर रुक गई और कुछ सोचने लगी। अगर वह सुन पाती तो सुनती कि वह कह रहा है– 'शारदा, वर्षों से नहीं, जैसे अनंतकाल से तुम मेरी स्मृति में हो। सारा भारत घूमता रहा, तुम मुझे और याद आईं। यहाँ भी नियाग्रा के प्रपात में तुम्हारा ही कंठ-स्वर सुनता हूँ। 'चेरी' के फूलों में गुलमुहर के फूलों की तरह तुम्हारा रूप देखता हूँ और 'लेवेंडर' के फूलों में शिरीष के फूलों की तरह तुम्हारी गंध पाता हूँ।'

लेकिन शारदा ने कुछ भी नहीं सुना था। उसका चेहरा प्रतिक्रियाहीन था। उसने दृष्टि ऊपर उठाई। कुछ देर तक भावनाविहीन-सी 'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' का लेबल पढ़ती रही और थोड़ी देर के बाद न जाने क्या सोचकर कुछ उदास-सी मुद्रा में मुड़कर धीरे-धीरे वापस जाने लगी। उसने शारदा को ज़ोर-ज़ोर से आवाज़ लगाई– 'शारदा, रुक जाओ शारदा, मुझे भी साथ लेती जाओ। निकाल लो मुझे यहाँ से। यहाँ मैं बहुत बेचैन हूँ। सिर्फ़ तुम्हीं हो, जो मुझे यहाँ से निकाल सकती हो।' लेकिन शारदा तक उसका एक भी शब्द नहीं पहुँच रहा था। वह उसी तरह धीरे-धीरे उदास-सी उससे दूर होती गई, दूर जाती रही और वह निराश, हतप्रभ होकर धम्म से फ़र्श पर बैठ गया।

उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। शारदा के वापस चले जाने से जैसे वह विक्षिप्त-सा हो गया। साथ-ही-साथ बाहर से स्वस्थ एवं ताज़ा हवा के न जाने से उसका दम घुट रहा था। वह बेचैनी से छटपटाने लगा और फिर कमरे की दीवारों से टकराने लगा। दीवारों में कहीं भी एक भी दरवाज़ा नहीं था। उसे दरवाज़े की तलाश थी ताकि बाहर निकल सके। वह चाहता था किसी तरह उस घुटन भरे कमरे से निकलकर बाहर प्रकृति की गोद में चला जाए और अन्य लोगों की तरह वह भी वर्षा, लू और ठंडक का अनुभव करे। वह भी औरों की तरह प्राकृतिक ढंग से रहे। पर उसे एक भी दरवाज़ा नज़र नहीं आया। अब वह बाहर नहीं निकल सकता था।

उसने देखा, इसी बीच कुछ और व्यक्ति उसके कमरे की बगल से गुज़र रहे थे। वे शराब पिए हुए थे। आपस में हँस-बोल रहे थे। उसके कमरे के पास पहुँचकर वे ठिठककर रुक गए। उसने देखा उनमें से एक ने रुकते-रुकते-से नशे के कारण लड़खड़ाती ज़ुबान में उसकी दीवार पर चिपके एक लेबल को आँख लगाकर पढ़ा– 'इसमें एक ब... ब...बहु...बहुत अच्छा आदमी रहता है।' और पढ़कर ज़ोर-ज़ोर से खिलखिला कर हँसने लगा और अपने दोस्तों को हाथ के इशारे से इकट्ठा कर कहने लगा– 'दोस्तो, देखो-देखो। इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' और व्यंग्यात्मक ढंग से अपने होठों पर उँगली रखकर सबको चुप रहने का इशारा किया। जैसे ज़ोर-ज़ोर से बोलने पर इस बहुत अच्छे आदमी को तकलीफ़ होगी। यह देखकर उसे और भी पीड़ा हुई। वह और भी बेचैनी से भर गया। उसने देखा, इसी बीच 'इसमें एक बहुत अच्छा आदमी रहता है' के लेबलों से उसके कमरे की सारी दीवारें भर गई थीं और अब इतनी-सी भी जगह नहीं बच रही थी कि ज़रा-सी भी रोशनी अंदर आ सके। कमरा बिल्कुल अँधेरा हो गया था। अब न बाहर की हवा ही अंदर आ रही थी और न ही कहीं से रोशनी का कोई टुकड़ा ही।

अँधेरे बंद कमरे में जैसे उसका दम घुटने लगा था। उसे लगा अब कुछ ही देर में 'एक बहुत अच्छा आदमी' के लेबल चिपके कमरे में उसका दम घुट जाएगा और वह मर जाएगा। उसने ईश्वर से कातर स्वर में प्रार्थना करनी शुरू कर दी–'हे ईश्वर, कहीं से इस कमरे में एक खिड़की ही खोल दो ताकि बाहर से खुली हवा और रोशनी अंदर आ सके। और नहीं तो इस कमरे में कम-से-कम इतना-सा सूराख़ ही बना दो ताकि हाथ बाहर भर निकाला जा सके, जिससे आस-पास चलते उन लोगों के मुँह बंद कर सके, जो यह कह रहे हैं कि 'इस कमरे में एक बहुत अच्छा आदमी रहता है।' और बाहर से दीवारों पर चिपके 'एक बहुत अच्छा आदमी' के लेबलों को नोंचकर फेंक सके।'

❐ प्रोफ़ेसर, भूगोल विभाग, ड्रेक यूनिवर्सिटी,
देहस मोइनेस, आयोवा
ई-मेल– rameshCDhussa"ramesh.dhussa@drake.edu

धीरा पंडित, केकड़े और मकड़ियाँ

डॉ॰ कमला दत्त

तुम घर पर रहो।

वह बाहर रहे।

तुम स्वतंत्र जीवन बनाओ। तुम उसका घर न उजाड़ो, तुम्हारा भी बना रहे।

तुम आज़ाद हो।

तुम आज़ाद हो।

कोई हथौड़ा मारता रहा था धीरा के दिमाग़ में। उसने कुर्सी मेज़ के पास सरकाई थी, सिर मेज़ पर टिकाया था, कुछ देर सुबकी थी और फिर सिर मेज़ पर ज़ोर-ज़ोर से पटकना शुरू कर दिया था। कुछ देर डॉ॰ जसिकी हतप्रभ बैठे रहे थे, उनसे कुछ भी करते न बना था और फिर झटके से उठकर उन्होंने धीरा को कंधों से कसकर पकड़ लिया था, 'स्टॉप इट, स्टॉप इट!' और कुछ लम्हों में धीरा उनके हाथों के दबाव से शिथिल पड़ गई थी और फिर रुक-रुककर सुबकती रही थी और बीच-बीच में किसी आहत जानवर की तरह कराहती रही थी।

फिर एक के बाद एक पेपर नैपकिन टोकरी में गिरे थे।

'तुम इसी तरह नैपकिन फेंकती रही हो। जाने मुझे कितने और डिब्बों का ऑर्डर देना पड़ेगा।'

धीरा के आँसूभरे चेहरे पर खिसियानी हँसी आकर लौट गई थी और फिर कई लम्हों तक अपने में खोई रही थी वह। डॉ॰ जसिकी के परे, दीवार से परे कुछ खोजती उसकी आँखें पथरा गई थीं। डॉ॰ जसिकी ने कुरेदा था, 'क्या सोचने लगीं?'

'कुछ भी नहीं।'

'कुछ तो सोच रही थीं ...'

इस बीच कुर्सी से उठ डॉ॰ जसिकी ने खिड़की के परदे खोल दिए थे। बाहर पेड़ों का रंग कुछ-कुछ बदल रहा था।

जन्म 4 नवंबर, लाहौर (अब पाकिस्तान) में; शिक्षा—एम-एस॰सी॰ ऑनर्स तथा पी-एच॰डी॰ पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़ (भारत); सन् 1969 में अमरीका आईं व अब जार्जिया में स्थाई निवास है; पेशे से वैज्ञानिक होते हुए भी मूलत: हिंदी की कहानी-लेखिका हैं। उनकी कहानियाँ हिंदी की प्रसिद्ध पत्रिकाओं—धर्मयुग, सारिका, कहानी, हंस आदि में प्रकाशित होती रही हैं। 'मछली सलीब टँगी' उनकी कहानियों का प्रकाशित संग्रह है। नाटकों के क्षेत्र में भी उनकी रुचि रही है। तीन बड़े नाटकों में अभिनय भी किया। अटलांटा में तथा भारत-निवास के दौरान ग्यारह मुख्य नाटकों में हिस्सा लिया। जार्जिया की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्थाओं से जुड़ी हुई हैं। सन् 1990 में इंटर कल्चरल कांफ्रेंस में महिलाओं पर मानव-अधिकार के विषय में प्रस्तुत डाक्युमेंट में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। अमरीका के विभिन्न विश्वविद्यालयों में शोध व शिक्षाक्षेत्र से जुड़ी रही हैं। आजकल एक विशेष वैज्ञानिक शोधकार्य में संलग्न हैं, लेकिन कहानियाँ भी लिख रही हैं। वे मोर हाउस (More House) स्कूल आफ़ मेडीसिन, जार्जिया में सेवारत हैं।

इस बार पतझड़ कुछ जल्दी ही आ गया है। धीरा की 'हूँ' पतझड़ की हवा के साथ वातावरण में तैर गई थी।

सरदी से पहले सरदी आने का अंदेशा।

'हाँ, कहो, क्या सोच रही थीं?'

'बचपन में हम लोग शिमला में रहते थे। चारों ओर पेड़ों पर बंदर रहते थे। एक बार एक बँदरिया का बच्चा मर गया था। वह मरे बच्चे को छाती से चिपकाए इधर-उधर भटकती रही थी, कराहती रही थी। फिर बच्चे की लाश गलने लगी थी—चारों ओर सड़ांध फैलती गई। आसपास के लोग डर गए थे कि बीमारी न फैल जाए। फिर कुछ समझदार लोगों ने पुराने चीथड़ों का गोला बनाया था, उसे मिट्टी के तेल में भिगो, आग लगा, पेड़ पर फेंका था, जहाँ बँदरिया बैठी थी, आग के डर से जब वह भागी तो बच्चे की लाश अलग हो ज़मीन पर गिरी थी और लोगों ने उठाकर उसे जला दिया था। पर बँदरिया कई दिनों तक कराहती रही थी।'

धीरा को फिर अपने में खोए देख डॉ॰ जसिकी फिर पूछ उठे थे, 'क्या सोचने लगीं? हाँ, कहो, क्या सोच रही थीं?'

'कब?'

'इस वक़्त, अभी।'

'बस, उस दिन की बात।'

'किस दिन की बात?'

उस दिन धीरा ने ही बिल्डिंग सुपरिंटेंडेंट की मिन्नत की थी, 'मैं बस उसे एक बार देखना-भर चाहती हूँ। क्या अपनी गाड़ी में मुझे ले जाएँगी?'

'क्या करोगी देखकर, सब समझती तो हो ...'

यह एक हारा हुआ युद्ध है—एक

हारा हुआ युद्ध।

और फिर कार में बैठते हुए एक बार फिर मिसेज सलेवन आशंकित हुई थीं, 'सह सकोगी उसे तुम, उस सबको है इतनी सहनशक्ति?'

धीरा ने ही कहा था, 'क्या मरीज़ कभी सर्जरी के लिए तैयार होता है मिसेज सलेवन? ... एक बार देख लूँगी तो शायद मन सँभल जाए। मुझमें सच बर्दाश्त करने की हिम्मत आ जाए।'

❐

जीत की गाड़ी बर्कशहर टाउन हाउसेज़ के सामने रुकी थी। वह कार से निकलकर इधर-उधर देख रही थी। फिर नाटे क़द और सुनहरे बालों वाली एक लड़की उससे लिपट गई थी और वे वहशियों की तरह एक-दूसरे को बेतहाशा चूमने-लगे थे। धीरा कार से निकलकर पगलाई हुई-सी उनकी तरफ़ भागने लगी थी। मिसेज सलेवन ने उसे ज़बरदस्ती कार में वापस धकेला था।

❐

दूसरी मंज़िल की खिड़की से एक परदा सरका था। एक पुरुष-मुख भी उन दोनों को ताकता लगा था। धीरा ने सोचा था, क्यों नहीं वह पिस्तौल दाग़ देता? क्या उसके पास पिस्तौल है? गुहायुग का आदिम आदमी क्या यह बर्दाश्त करता? जानवर भी अपने साथी को किसी और के साथ जाते देख लड़ाई करते हैं धीरा को उस टेलीविज़न कार्यक्रम की याद हो आई थी, जहाँ एक कैराबू दूसरे को घायल कर देता है और फिर विजयी कैराबू मादा के साथ चल देता है। तो जीत और वह विजयी है? वह और खिड़कीवाला चेहरा हारे हुए हैं? क्या उन्हें मैदान छोड़ देना चाहिए? फिर उसे एकाएक चक्कर आ गया था। मिसेज सलेवन ने गाड़ी मोड़ी थी। एक रेस्तराँ में रोककर उसे रस पिलाया था और अपार्टमेंट बिल्डिंग में पहुँचकर कहा था, 'तुम अपनी किसी हिंदुस्तानी मित्र को फ़ोन करो। आज का दिन तुम्हें अकेले नहीं रहना चाहिए।'

❐

जब मिसेज सलेवन ग्रॉसरी शॉपिंग से लौटीं तो कॉरीडोर में लोगों की फुसफुसाहट और गैस की बू भरी थी और हफ़्ते भर बाद लौटी तो उसकी सहेली बिंदु ही उसे ज़बरदस्ती डॉ॰ जसिकी के पास ले आई थी।

❐

अब तो यह बात काफ़ी पुरानी हो गई है। परत-दर-परत कितना कुछ खोला था धीरा ने डॉ॰ जसिकी के सामने। एक पूरी संस्कृति, एक पूरी सभ्यता। इस बार तो धीरा, पूरे साल भर के अंतराल के बाद आई है डॉ॰ जसिकी के पास, एक बार फिर बिलखती हुई।

❐

किसी एक सेशन में वह देर तक डॉ॰ जसिकी को घूरती रही थी ... 'इस तरह क्या देख रही हो?'

'आप मेरे पिता जैसे लगते हैं। मैं सोलह की थी, जब पिता का देहांत हुआ। भाई ने ही सँभाला मुझे और मेरे छोटे भाई को। माँ-दादी गाँव रहीं। भाभी ने कभी नई-नई साड़ियाँ नहीं खरीदीं। प्रोफ़ेसर की तनख़्वाह से कुछ ज़्यादा होता नहीं और फिर वहाँ तो महँगाई ही इतनी है।'

'पर धीरा, मेरी समझ में नहीं आता, बिना कुछ जाने-बूझे तुमने शादी को हाँ कैसे कर दी? तुम पढ़ी-लिखी थीं।'

उनकी कही बात को पूरी संस्कृति पर टिप्पणी मान धीरा नाराज़ हो उठी थी ... 'वहाँ भी परिवार देखे जाते हैं ... बात वैसे ही है, जैसे कंप्यूटर मिलाता है सब-कुछ और कंप्यूटर भी तो ग़लत हो जाते हैं, क्योंकि उन्हें चलानेवाले आदमी ही तो हैं।'

डॉ॰ जसिकी ने समझाया था, 'तुम्हें इस तरह डिफेंसिव नहीं होना चाहिए।' और फिर कह उठे थे, 'सभी हिंदुस्तानी आलोचनाओं को इतने व्यक्तिगत तौर पर क्यों लेते हैं? शायद यह प्रवासियों की नियति है। अपनी ज़मीन से अलग होने का दुख और कटा और यह अपराधबोध भी कि उन्होंने अपनी ज़मीन छोड़ दी है सुख-सुविधाओं के लिए। सो वहाँ की हर वस्तु को रोमांटिक तरीक़े से देखने लगते हैं।'

❐

धीरा पिछले चार सालों से कॉलेज में प्रोफ़ेसर थी। अच्छा लड़का मिल नहीं रहा था। एक डॉक्टर से सगाई हुई थी, पर उसकी माँ बड़ी लालची थी। माँ-भाई तो ज़मीन बेचने को तैयार थे, धीरा ही अड़ गई थी, 'मैं कोई बिकाऊ गाय नहीं, पढ़ी-लिखी हूँ नाक-नक़्श, क़द-काठी सभी-कुछ तो है।'

और फिर जीत उन दिनों शादी के लिए भारत आया हुआ था। उसकी माँ-बहन आईं और पसंद कर गईं।

'मुझे तो पहले से ही शक करना चाहिए था। जब देखने आया और जैसा कि रिवाज है, चाय के बाद हम दोनों को कुछ देर अकेला छोड़ा गया था कि बात कर लें, तसल्ली कर लें। ख़ाक तसल्ली होती है पंद्रह-बीस मिनट में! जानते हैं, पहला सवाल क्या पूछा था?'

'क्या पूछा था?'

' ... कि तुम किसी को प्यार करती हो? किसी से था इस तरह का कोई संबंध तुम्हारा?'

'बड़ी खीज आई थी उस सवाल पर। सिर हिलाकर ज़ाहिर किया था—नहीं, मेरा किसी से संबंध नहीं, नहीं, मेरा किसी से प्यार नहीं। अगर संबंध होगा तो आपसे शादी के लिए 'हाँ' क्यों करूँगी?

'भाभी ने समझाया था–कोई घटना घटी होगी बेचारे से कहीं और।

अमरीका में रहकर लोग बड़े स्पष्टवादी हो जाते हैं। यह नहीं जानता कि हमारी धीरा ऐसी-वैसी लड़कियों में से नहीं है।

'और फिर दो हफ़्तों में तो शादी हो गई थी। सभी ने कहा था–कितना मिलनसार है, कितना मीठा बोलता है। तेरह साल से अमरीका में रहा है, पर ज़रा भी फूँ-फाँ नहीं।'

❐

'भाई ने हिम्मत से ज़्यादा ख़र्च किया था। शादी के बाद उन तीन हफ़्तों में सारे दिन पीछे-पीछे घूमता रहा था–धीरा! धीरा! कहकर लोगों के सामने बाँहों में घेर लेता था। चूम लेता था। सच बड़ी शर्म आती थी। मना करने पर कहता था– 'अरे भाई, तुम मेरी ब्याहता हो, भगाकर नहीं लाया।' घरवालों ने ही समझाया था– 'तुम खीजा न करो। तेरह साल अमरीका रहा है, यह सब तो चलेगा ही ...'

❐

'डॉ॰ जसिकी ने चौंकाया था, 'धीरा, फिर किस सोच में पड़ गईं?'

'उन हफ़्तों में लगा था, फ़िल्मों में देखा प्यार, कहानियों में पढ़ा प्यार ज़िंदगी में भी हो सकता है और यह भी सच था कि वह पहला पुरुष था, जिसने मुझे बाँहों में लिया था, प्यार किया था और कहा था–तुम सुंदर हो। प्यारी हो। लोग इतना झूठ इतनी आसानी से कैसे बोल लेते हैं? हनीमून के लिए हम लोग नैनीताल गए थे ... वहाँ झील पर घूमते-घूमते कभी-कभार लगा था, बड़ा उखड़ा-उखड़ा है, सोचा शायद मुझसे नाराज़ है। मैंने पूछा तो बस, टाल गया। सोचा, शायद मेरी शर्म-झिझक ने उसे नाराज़ कर दिया है। बस, यही कहता रहा बार-बार–तुम बड़ी भली हो, बड़ी समझदार। अमरीकी लड़कियाँ तो बड़ी चालाक होती हैं। बस, कोई भरोसा नहीं। कहेंगी कुछ, करेंगी कुछ। मतलबी ...

'बस, फिर मेरे वीज़ा के पेपर्स जमा करा कर यहाँ लौटा था। उसमें सात-आठ महीने तो लगने ही थे।

❐

'आते ही उसने टेलिग्राम भेजा और फिर एक लंबा बड़ा प्रेम पत्र और फिर पत्र आने बंद हो गए थे और जब मेरे पाँच ख़तों का जवाब नहीं आया तो घबराकर मेरी माँ और भाभी उसकी माँ से मिलने गई थीं। माँ ने कहा था ... 'बस जी, वैसे ही काम में लग गया होगा। ज़रा आलसी है। नहीं जी, हमने शादी के लिए कोई ज़बरदस्ती नहीं की। पहले भी तीन बार आया था। हर बार 'न' ही करता रहा। हमने तो इतना भी कह दिया था, वहीं कोई पसंद है तो ले आ। हम सभी शगुन का अपना चाव पूरा कर लें। हर बार यही कहता रहा, वहाँ कोई नहीं है, मुझे नहीं करनी शादी, मैं सैलानी आदमी हूँ। शादी मुझसे नहीं निभेगी ... और इस बार आते ही कहने लगा–माँ बड़ा चाव है न तुझे मेरी शादी का, सो कर दे अब ... हमने कहा भी–बच्चा, तू बरसों से टालता रहा है, अब ... इतनी जल्दी अच्छी लड़की और सब बंदोबस्त कैसे करें? हमें पहले लिखा होता, लड़कियाँ ढूँढकर रखते। अब पाँच हफ़्तों में क्या होगा। सभी बंदोबस्त कैसे करें?

'... कहने लगा, माँ, इस बार नहीं हुई तो फिर कभी नहीं होगी। फिर न कहना ... बस जी, हम दौड़-धूप में लग गए। धीरा हमें पसंद आ गई और उसे भी। बस, यही कहता रहा, बड़ी समझदार लड़की है। मुझे तितलियों जैसी लड़कियाँ पसंद नहीं। ज़्यादा उम्दा नहीं, पर क्या बढ़िया व्यक्तित्व है ...'

धीरा सोचकर कसैली हँसी हँसी थी।

यारी के लिए चुलबुली अम्मरीकी।

शादी के लिए समझदार हिंदुस्तानी।

उसकी माँ बस यही कहती रही थी बार-बार– 'भाई साहब, फ़िक्र न करें। आपकी बेटी है तो हमारी भी बहू है। बस जी, डर लगता है। सुना है, अम्मरीकियों में रिवाज है, लड़कियाँ लड़कों के पीछे पड़ी रहती हैं और हाँ, भाई साहब, अपना जीत तो है भी सोना, गबरू जवान बस जी, अभी ज़रा डाँट के ख़त लिखती हूँ। बस जी ज़रा लापरवाह है। भाई साहब, आपकी तो इतनी वाकफ़ियत है, ज़रा वीज़ा ऑफ़िस में ज़ोर लगाइए न! धीरा जाए, वहाँ सब-कुछ सँभाले। हमारा तो जी एक ही एक लड़का है। पोते-पोतियों की आस लगाए बैठे हैं हम भी...।'

और धीरा पैर छूने को हुई तो 'दूधो नहाओ, सौ पूतोंवाली हो' का वह आशीर्वाद। धीरा डॉ॰ जसिकी को भारतीय संस्कृति में पुत्रों का महत्त्व समझाती रही थी।

प्रत्युत्तर में डॉ॰ जसिकी ने बताया था, 'धीरा, यहूदियों में भी यही है।'

❐

फिर उस महीने एक ख़त आया था और फिर लंबी चुप्पी। इस बीच उसकी माँ एक बार आई थी। वीज़ावालों को कोसती हुई– 'सुना है जी, अपने हिंदुस्तानी भी झूठी बीवियाँ ले जाते हैं। तभी तो वीज़ावाले इतने सख़्त हो गए हैं। भाई साहब, सच कहती हूँ। हमें कोई ऐसी-वैसी बात का पता होता तो आपको धोखे में न रखते। हम भी तीन-तीन लड़कियों वाले हैं। आपकी खज्जल (परेशानी) ख़राबी हमसे नहीं देखी जाती।'

फिर आनेवाले छह महीनों में सिर्फ़ दो ख़त आए थे। अड़ोसी-पड़ोसी, नाते-रिश्तेदार भी पूछने लगे थे– धीरा कब जा रही हो, ख़त-वत तो आते रहते होंगे ...

'भाई भाभी, माँ, दादी और मैंने–सबने वही एक रटा-रटाया जवाब दिया था बार-बार। सब ठीक है जी, पिछले हफ़्ते ही ख़त आया था। बस जी, एक-दो महीने की बात है। हमारे पास भी रह ले। जाने फिर कब वापस आए और इतनी दूर से कहाँ जल्दी-जल्दी आया जाता है?'

❐

वीज़ा मिल गया था। सब तैयारी शुरू थी– नए कपड़े, साड़ियों पर फाल, नए ब्लाउज़। फिर जीत की माँ रोती हुई पहुँची थी–'भाई साहब, लगता है उसका दिमाग़ ख़राब हो गया। कहता है, अभी न भेजो धीरा को। मैं यहाँ एक मुसीबत में फँसा हूँ। धीरा से शादी जैसे एक ग़लती ही हो गई। माँ, उसे न भेजो यहाँ ...'

पहले घर-भर में ग़ुस्सा, फिर रोना और फिर ख़ामोशी घिर आई थी। रखकर भी क्या होगा, लोग बातें अलग बनाएँगे। बस, वहाँ भेजें जैसे-तैसे। एक बार वहाँ पहुँची तो सारी बात सँभाल लेगी। यह कैसा फ़ितूर है कि मर्ज़ी से शादी कर गया है और अब कहता है, न भेजो।'

दादी का लगातार एक कमरे से दूसरे कमरे में जाना, 'जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय ... जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय' और फिर कई क़िस्से-कहानियाँ। जुनेजा का जँवाई नहीं बुलाता था अपनी बीवी को ... बस जी, किसी मेम के चक्कर में पड़ गया था। बस जी, वहाँ गई और सब ठीक कर लिया। शरमे का जँवाई, उसका भी वही हाल। लड़की वहाँ गई, पहले कोशिश की, बात सँभल जाए, जब नहीं हुआ तो तलाक़ ले लिया। घर-पैसे अपने नाम करवाए, अब तो सुना है जी कि दूसरी शादी भी कर ली है। बस जी, थोड़ी हिम्मत, थोड़ा सब्र सब ठीक हो जाएगा।

सोमवार का व्रत रख धीरा। शिवलिंग पर पानी चढ़ा धीरा। पूर्णमासी का उपवास रख धीरा। सब ठीक हो जाएगा।

धीरा थोड़ी मंगली है–मूँगा पहनाओ जी।

धीरा सभी व्रत-त्योहार, मन्नतें डॉ॰ जसिकी को समझाती रही थी।

❐

रोने-धोने के बावजूद धीरा भेज दी गई थी, सब-कुछ सँभालने के लिए। डरी-सहमी धीरा मिठाई के डिब्बों, हारों को सँभालती हुई हवाई जहाज़ में बैठी थी। पेटी लगाने में कितनी मुश्किल हुई थी। साथ वाले गुजराती परिवार ने बड़ा हौसला दिया था। कॉलेज में लड़कों को पढ़ानेवाली धीरा अचानक बड़ी लाचार और अपाहिज हो आई थी। न्यूयॉर्क एयरपोर्ट पर बिना कुली के बड़े-बड़े बक्से उठाने में बड़ी दिक़्क़त हुई थी। कस्टम के बाद गुजराती परिवार ने बार-बार एनाउंसमेंट करवाया था–मि॰ जीत, कृपया अपने आगंतुक से एयर इंडिया के काउंटर पर मिलें ... मि॰ जीत, कृपया ...

शायद कार से आ रहा हो, रास्ते में गाड़ी ख़राब हो गई हो। कई बार सैक्रोमेटो टेलीफ़ोन किया था, बस घंटी बजती रही थी, बजती रही थी।

आनेवाले हादसों के डर से धीरा वहीं अधमरी हुई जा रही थी। थकी-हारी धीरा ने रात होटल में बिताई थी। सुबह मिठाई, डिब्बों, परिचितों के रिश्तेदारों को सौंपने के लिए लाए तोहफ़ों को सँभालती हुई धीरा सैक्रोमेटोवाले हवाई जहाज़ में बैठी थी। फूलों की मालाएँ बैग में निचुड़ी हुई बदबू देने लगी थीं। धीरा ने बार-बार चूड़े की चूड़ियाँ गिनी थीं, जो भाभी ने आते वक़्त ज़बरदस्ती उसके हाथ में डाल दी थीं। हाथी दाँत की चूड़ियाँ, हाथी की तरह अडिग सुहागन।

❐

डॉ॰ जसिकी, वह सैक्रोमेटो एयरपोर्ट पर भी नहीं था। जानते हैं, उन दिनों मैं इतनी डरी-सहमी थी कि गला सूखने पर भी इतनी हिम्मत नहीं थी कि कोक मशीन में पैसे डाल कोक निकाल लूँ। एक बार मन चाहा, किसी से कहूँ ये लीजिए पैसे, मुझे एक कोक निकाल दीजिए, वाटर फाउटिन था पर डर था, कहीं ग़लत चला अपने को ही भिगो न लूँ। दो घंटे एयरपोर्ट पर ही बैठी रही थी। फिर एयरपोर्ट अथॉरिटी के लोगों ने सुझाया था–आपके पास पता है, कैब लेकर घर चली जाएँ। वैसे अँग्रेज़ी स्कूल की पढ़ी थी, हैरानी हुई थी, कोई मेरी बात-चीत समझ नहीं रहा था। हर बात दो-दो, तीन-तीन बार समझानी पड़ी थी। कैबवाला अपार्टमेंट बिल्डिंग के बाहर उतार चलता बना था। बाहर का दरवाज़ा खोलने पर उन्हीं के साथ अंदर लॉबी में पहुँच गई। वह अपार्टमेंट में नहीं था। हारकर लॉबी में ही अपने बक्सों पर बैठ गई थी। पर आने-जानेवालों को देख मुस्कुराती हुई। अजनबी शहर, अजनबी लोग–बड़ी मुश्किल से अपने को रोने से रोका था और फिर कोई मिसेज सलेवन को बुला लाया था–

'तो आप हैं श्रीमती जीत? मुझे तो लगा कि उस सुनहरे बालोंवाली सुंदरी के साथ वह शादी करनेवाला है ...' और फिर मेरे चेहरे पर आए भावों को देख कह उठी थीं, 'फ़िक्र मत करो सुंदरी, तुम उसके लिए ठीक हो, उस लड़की से कहीं ज़्यादा ख़ूबसूरत।'

मिसेज सलेवन अपार्टमेंट में बैठाकर चली गई थीं।

❐

माँ की कही बात धीरा के दिमाग़ में तैरती रही थी–उसके पैरों पर सिर रख कहना, जैसी भी हूँ, तेरी हूँ। तू ही रख

लाज हमारी भी और अपनी भी। शादी तो तूने मुझी से की है, कुछ ऐसा-वैसा हो भी गया है, तो छोड़ उसे। न बाप-दादों की इज़्ज़त पर पानी फेर। तू भी ख़ानदानी, हम भी ख़ानदानी। कोई लल्लू-पंजू नहीं।

सुनहरे बालों वाली औरत की तसवीरें चारों ओर बिखरी थीं। चाय के लिए बहुत मन होने पर भी वह कुकिंग रेंज जला नहीं पाई थी। माचिस की डिब्बी कहीं थी नहीं। यकायक बहुत भूख लग आई थी। हवाई जहाज़ में भी कुछ खाने का मन नहीं हुआ था। भूख से बहुत कसमसाने पर फ्रिज में देखा था उसने। दो सड़े टमाटर, एक प्याज़, बियर की कुछ बोतलें—बस, इनके अलावा कुछ नहीं था वहाँ। हारकर साथ लाए मिठाई के डिब्बे से कलाकंद निकाल खाया था। आज भी सब-कुछ वैसा-का-वैसा ही याद है—मोतीचूर के कई डिब्बे लड्डू उसके घरवालों ने थमा दिए थे। जीत को बहुत पसंद थे।

हँसी थी वह। लड्डू भी कोई खाने की चीज़ हुए।

डॉ॰ जसिकी पूछ उठे थे, 'क्या बात है धीरा, बड़ा मंद-मंद मुस्कुरा रही हो?'

कहते हुए शर्म आई थी कि ज़हन में मिठाइयाँ घूम रही हैं। कुछ पल पहले बिलखने वाली धीरा मिठाइयों की याद से बच्चों की तरह ख़ुश हो आई थी।

एक चुप्पी, और वह फिर उस पहली रात में पहुँच गई थी। सोफ़े पर बैठे-बैठे गठरी बनी सो गई थी। रात गए जीत आया था। उसके अंदर आने से पहले शराब की भभक— 'तुम यहाँ? लिखा तो था तुम मत आओ। फिर क्यों आ गईं। कोई वजह थी तुम्हें यहाँ न बुलाने की।'

ख़ुद्दार धीरा उसके पैरों पर सिर तो नहीं रख पाई थी, पर बच्चे की तरह सुबक पड़ी थी। कब जीत आया, कब उसे बाँहों में घेरा और कब बिस्तर पर गए, वह सिहरन आज तक तन-मन में बसी है और कुछ पलों में बरसों से उफनता समुद्र जैसे शांत हो गया था।

फिर सुबह जीत ने ही झकझोर कर उठाया था, 'कुछ ज़रूरी बात कहनी है, तुमसे, उठो, सुनो।'

वह पलंग के कोने पर सिर झुकाए बैठा था और लगातार बोलता गया था। 'कोई वजह थी तुम्हें यहाँ न बुलाने की, तुम्हें समझना चाहिए था, यहाँ आकर तुमने हालात और जटिल कर दिए हैं।

'मेरे एक अमरीकी औरत से बरसों से संबंध हैं। तुमसे ज़्यादती हुई। मैंने सोचा था, हिंदुस्तान आऊँगा, शादी करूँगा, सब ठीक हो जाएगा। जैसे पागलपन में ही सब-कुछ हो गया। पालगपन में तो किए गए क़त्ल की भी सजा नहीं मिलती।'

चाहकर भी वह कुछ कह नहीं पाई थी कि पागलों को पागलख़ाने में रखा जाता है, सड़कों पर नहीं छोड़ा जाता कि हर आने-जाने वाले पर पत्थर फेंकें, उन्हें आहत करें।

'उस औरत से शादी क्यों नहीं की?'

'कट्टर कैथॉलिक है। कैथॉलिक धर्म में तलाक़ अवैध है।'

'तो क्या कैथॉलिक धर्म अवैध संबंधों की इजाज़त देता है?'

'यही तो मेरी लड़ाई रही है उससे और ऐसी ही एक लड़ाई के बाद भारत लौटा था और शादी हो गई।'

'आप जानवर हैं जो बाँध दिए गए? हिंदुस्तानी औरत तो गाय की तरह बाँध दी जाती है। आप तो मर्द थे।'

वह अपने में ही बोलता रहा था, 'वह धर्म की वजह से तलाक़ नहीं ले सकती और हम एक-दूसरे के बिना रह नहीं सकते। उसके पति ने तो स्थिति स्वीकार कर ली है और फिर तीन बच्चे भी हैं। हमारी यातना कौन देख रहा है?'

'... और मेरी यातना कौन देख रहा है?'

'तुमसे शादी करके बहुत आश्वस्त लौटा था। उसे फ़ोन तक नहीं किया था। फिर जब ऑफ़िस में मिले, तो पुराना सब-कुछ एक-साथ उमड़ आया। मैं उसे बारह सालों से जानता हूँ। वह मेरे रोम-रोम में बसी है। हम एक-दूसरे के पूरक हैं। हमारे लिए कौन आसान है, बिना शादी के यह रिश्ता निभाना और अब तुम आ गई हो।

मैं आ गई हूँ, क्योंकि आप मुझसे शादी कर आए थे। आप ही हमारे घर आए थे और वह हर वक़्त धीरा-धीरा! ... वह प्यार! सब दिखावा था, सब नाटक? और आपके नाटक की क़ीमत चुकाएँगे ज़िंदगी-भर मैं और मेरे घरवाले।

'तुम रहो इस अपार्टमेंट में, कुछ आगे की पढ़ाई शुरू कर लो, मैं फ़ीस दूँगा। तुम आत्मनिर्भर बन जाओ और शायद कोई दूसरा आदमी तुम्हें यहाँ मिल जाए।'

लगा था, जैसे उबलता तेल किसी ने कानों में उड़ेल दिया है। बस, जड़ बनी बैठी रही थी।

सँभलने पर सोचा था, अगर बहुत प्यार दूँगी तो शायद सँभल जाए। क्या नहीं है मेरे पास, जो उसके पास है। गांधारी धृतराष्ट्र के लिए अंधी बनी रही। सावित्री सत्यवान को यम के पास से लौटा लाई थी। क्या मैं जीत को मरिया से नहीं लौटा पाऊँगी?

डॉ॰ जसिकी उसकी गांधारी, सावित्री-सत्यवान की बात सुन बहुत खीजे थे, 'धीरा, छोड़ो उसे। उसकी ज़िंदगी में अब

कोई और है। तुम्हारा सत्यवान लौटना चाहता था और जीत नहीं और धृतराष्ट्र अंधा था। सभी के लिए, न कि सिर्फ़ गांधारी के लिए।

डॉ॰ जसिकी उसकी बातों को दक़ियानूसी मान उसे शायद पागल ही मान बैठे थे और एक बार फिर झल्लाए थे, 'तुम इतनी पढ़ी-लिखी हो, समझदार हो, पर सच्चाई यह है कि तुम्हारी सावित्री-सत्यवान वाली कहानियाँ बकवास हैं ... उबकाऊ ... समझदार बनो ... इसे स्वीकार करो ... स्वीकार।'

इस बार धीरा आई तो डॉ॰ जसिकी ने सोचा था, धीरा तो गांधारी से भी बहुत आगे निकल आई है अब।

उसी ने सुझाया था, 'क्यों न हम दोनों कुछ दिनों के लिए बाहर जाएँ, एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें तो शायद सब ठीक हो जाए।'

'धीरा, तुम्हारा-क़सूर नहीं। मैं उस औरत को दिलोदिमाग़ से अलग कर ही नहीं पाता। हमारे पास जो कुछ है, वह इतना विशेष है और इस लायक़ है कि उसके लिए कोई भी त्याग किया जा सके,' उसने प्रतिवाद किया था।

बहुत मिन्नतों के बाद जीत माना तो वे कुछ दिनों के लिए हवाई गए थे। दूसरे ही दिन बाथरूम से लौटी तो वह मरिया से टेलिफ़ोन पर बात कर रहा था। शर्म-लिहाज़ छोड़; धीरा बिफर उठी थी, 'क्या उसे कल रात का ब्योरा दे रहे थे कि तुम्हारी पत्नी उसके बराबर नहीं और उसकी जगह सुरक्षित है और क्या वेश्या भी अपने पति के साथ सोने के बाद तुम्हारे साथ नोट्स कंपेयर करती है...' जीत ने तड़ातड़ कई तमाचे जड़ दिए थे। बचपन में एक ही बार मार खाई थी उसने। प्लीज़-प्लीज़ कहने वाली धीरा पगला गई थी। लैंप, कपड़े, सूटकेस जाने क्या-क्या ज़मीन पर पटक दिया था उसने और फिर रोते-बिफरते फ़र्श पर ही ढेर हो गई थी।

वे दो दिन बाद ही सैक्रोमेंटो लौट आए थे।

कई-कई बार धीरा ने अपने-आपको समझाया था, मैं मन लगा पाठ करूँगी तो सब ठीक हो जाएगा। सोमवार का व्रत रखूँगी तो सब-कुछ ठीक हो जाएगा। ज्योतिषी वग़ैरह किस-किसके पास नहीं भटकी थी। एक अमरीकिन महिला एक मनोचिकित्सिका के पास ले गई थी। उस दिन की याद से तो आज भी दहशत होती है। उस अँधेरी गुफा-से कमरे में वह बैठी थी। चारों तरफ़ बिल्लियों की बड़ी-बड़ी तसवीरें थीं। कमरे में बस एक ही टिमटिमाती रोशनी लगी था। तसवीरों की बिल्लियाँ किसी दम नोच लेंगी। फिर तसवीरों की बिल्लियों की आँखें मरिया की आँखों में बदल गई थीं।

मनोचिकित्सिका ने चौंकाया था उसे, 'उसका कोई कपड़ा लाई हो?' उसने डरते-काँपते हाथों से जीत का स्वेटर उसे पकड़ाया था। कुछ पल स्वेटर को थामे मुँदी आँखों से बैठने के बाद उसने बोलना शुरू किया था, 'मुझे कुछ दिखाई दे रहा है। आग ही आग। जलता हुआ मकान और गिरती हुई दीवारें, और तुम दब रही हो उनके नीचे। फिर न कहना कि लार्वन ने नहीं कहा कि निकलो इस रिश्ते से। निकलो इस रिश्ते से। पर डरो नहीं, एक बड़ा प्यारा पुरुष मुख भी है– आग में तुम्हें सहारा देता हुआ, दुलारता हुआ।'

शायद भैया हैं।

मनोचिकित्सिका के यहाँ से लौटने पर समझ में नहीं आया था कि किससे डर रही हूँ मैं, उससे या जलते मकान से?

बिल्लियाँ स्वप्न में कई-कई दिनों तक नाचती रही थीं।

कई-कई बार समझाया था ख़ुद को और कई-कई बार बहुत टूटी थी। कई बार फ़ोन उठाने पर दूसरी तरफ़ से किसी ने बिना जवाब दिए फ़ोन रख दिया था। वह जीत पर चीख़ी थी। 'अपनी रखैल से कहो, फ़ोन पर जवाब दिया करे। कुछ सलीक़ा सीखे।' और वह ख़ुद सलीक़ा-तमीज़, सभी कुछ भूलती जा रही थी। जीत के बहुत रात गए लौटने पर वह भभकी। पगलाकर उसने चूड़ियाँ-प्लेटें, जाने क्या-क्या तोड़ा था। जीत को सज-धज कर जाते देख दरवाज़ा-रोक खड़ी हो गई थी। दरवाज़े पर से धकेले जाने पर सिर दीवारों पर ज़ोर-ज़ोर से पटका था और फिर प्लेटों और चूड़ियों के टुकड़े बीनते-बीनते ख़ुद ही लहूलुहान हुई थी। जाने कितनी रातें उस अजनबी शहर में इसी तरह बेसहारा सुबकते कटी थीं।

'मैं तुम्हें कब मना करता हूँ। तुम भी बाहर जाओ, डेटिंग करो।'

धीरा चीख़ी थी, 'तुम तो शर्म-लिहाज सब पी गए हो। मैं अब पति के रहते ब्वॉय फ्रेंड ढूँढने जाऊँ?'

और उसने कहा था, 'फिर तो और भी ज़रूरी है, हम तलाक़ ले लें।'

भाई के दोस्त का शिकागो से फ़ोन आने पर वह सिसकती रही थी। 'तुम समझदारी से काम लो।' दोस्त की बीवी ने कहा था, 'थोड़ा बेशर्म बनाओ अपने-आपको। यह भी अमरीकी औरतों के तितलीपने पर मरते हैं। वरना क्या है इस सफेद चमड़ीवाली के पास? अच्छी नाइटीज ख़रीदो और ...'

और एक रात नाइटी पहन उसका इंतज़ार करते हुए वह सचमुच जैसे वेश्या हो गई थी।

वह रात गए नशे में धुत लौटा था।

वह हफ़्तों बिस्तर से लगी रही थी।

डॉ॰ जसिकी ने बार-बार समझाया था, 'धीरा, या तो परिस्थिति से समझौता कर लो, और उसी में जियो, या इस

रिश्ते से उबर जाओ, अपने दोस्त बनाओ, अपनी ज़िंदगी जियो।'

भाई के दोस्त की बीवी ने समझाया था, 'ये भी एक बार फँस गए थे एक मेम के चक्कर में। बेबी सिटर थी। जब पता चला तो वो चोटी से पकड़ा, वो हालत ख़राब की कि दोबारा हिम्मत ही नहीं पड़ी उसकी इनसे मिलने की...'

और धीरा ने एक दिन बड़ी हिम्मत से मरिया को फ़ोन किया था, 'आख़िर आप चाहती क्या हैं? कृपया मेरे पति को अकेला छोड़ दीजिए।'

'ऐसा! तुम तो इस तसवीर में बहुत बाद में आयी हो। अगर इसे सुलझा न पाओ, तो यह तुम्हारा क़सूर है।' है-है करती एक खुर्राट अमरीकी आवाज़ ने रिसीवर रख दिया था और धीरा के दिमाग़ में बार-बार घूमता रहा था—अगर इसे सुलझा न पाओ, तो वह तुम्हारा क़सूर है ... अगर इसे सुलझा न पाओ, तो यह तुम्हारा क़सूर है।

डॉ॰ जसिकी ने सुझाया था, 'तुम वापस हिंदुस्तान क्यों नहीं लौट जातीं?'

भाई का ख़त आया था—'वैसे, धीरा, तुम ख़ुद समझदार हो। दोबारा नौकरी मिलनी यहाँ कौन आसान है? और लोग दुनिया-भर की बातें बनाएँगे। हमने किसी को कुछ बताया भी नहीं है। दोबारा शादी के अवसर भी यहाँ ज़्यादा नहीं हैं और अब कुछ सालों में मीना भी शादी के लायक़ हो जाएगी। तुम तो सब समझती हो। खुलकर अब क्या लिखें। अपना कैरियर वहीं बना लो और कुछ अरसे में शायद कोई अच्छा लड़का भी तुम्हें मिल ही जाए।'

जिस शादी पर धीरा का कोई अधिकार नहीं, जिस तलाक़ पर धीरा का कोई अधिकार नहीं होगा, वही मीना की शादी में रुकावट बन जाएगा। 'क्या कसूर है मेरा?'

माँ का ख़त अलग आया था, समझ-बूझवाला और दादी का ख़त अलग। वही सबसे हिम्मतवाली लगी थी—'कुड़िए, तू आ जा इत्थे। दोनों मांवा-धीवां रल-मिल के रह लांगे। रुढ़ जाना ऐ कोई वलैत है? एक छड्डी, दूजी ब्याही, दूजी छड्डी, तीजी ब्याही, असी कोई कुड़ी सुटनी नई सी। ओदी मां ही आयी सी झोली अड्डे।' मैं तो पहले ही कहंदी सां जिड़ा वोटी अगे पिच्छे नहीं फिरेगा। तूं आ जा कुड़िए, की करेंगी पराए मुल्क विच कल्ल कल्ली। रब वी नेकां नूं तंग करदा है। कुड़िये याद रख, जा को राखे साइयाँ मार सके ना कोय...'

जाको राखे साइयाँ मार सके ना कोय...।

एक बच्चा पैदा कर लो। क्या बदलनेवाला है बच्चे से, जो शादी से नहीं बदला। यहाँ आने से नहीं बदला। बस, मैं बँध जाऊँगी एक और जान से।

वह कंप्यूटर की पढ़ाई निभा नहीं पाई थी और जीत-मरिया ही दिलोदिमाग़ पर छाए रहे थे।

डॉ॰ जसिकी ने सलाह दी थी, 'तुम पढ़ी-लिखी हो, दूसरा साथी ढूँढो। जिनके पति मर जाते हैं, वे भी तो गुज़ारा करती हैं।'

मेरा पति मरा नहीं, अभी वह मरा नहीं ... उसने सोचा था।

एक आदमी किसी दूसरे की ज़िंदगी से ऐसा खिलवाड़ कैसे कर लेता है? इसने वेद मंत्रों को साक्षी मान मुझसे शादी की है ... छोड़ो, अब वेद मंत्रों को धीरा।

या अकेली रहो या कोई और साथी ढूँढो। अब इस उम्र में मुझे कौन मिलेगा? कौन अधेड़ वय?

डॉ॰ जसिकी ने पश्चिमी मनोविज्ञान की कसौटी पर उसे आँका था। यहाँ की परंपरा के अनुसार परीक्षण किया था। उसकी मानसिक स्थिति पर तर्क-वितर्क किया था। वह बार-बार उन्हीं पर झल्लाई थी।

'तुम्हें यहाँ आना ही नहीं चाहिए था। अब आई हो तो अपने हक़ के लिए लड़ो। अपने को मजबूत बनाओ। हम हरदम सहनशीलता का लबादा ओढ़ यह ज़ाहिर करते हैं, हम सब-कुछ सह लेंगे। जीत ने और लड़कियाँ भी देखी होंगी, पर उसे तुम ही क्यों पसंद आईं? तुम ही क्यों समझदार लगीं? लगा, तुम सब सँभाल लोगी, तुम घर पर बीवी बनी रहोगी और वह बाहर प्रेमिका बनाए रखेगा। सब-कुछ सहने वाली तुम और औरतों से उसके संबंध को भी सह लोगी। तुम इतनी दयनीय क्यों बनी रहती हो? इतनी सहनशीलता और विनम्रता क्यों?'

'पिता की मौत के बाद लगा था, ज़िंदगी पर मेरा कुछ हक़ है ही नहीं। जैसे मैं बोझ रही हूँ माँ पर। भाई-भाभी पर। भाई फ़ीस दे देते थे, पर किताब-कॉपी के लिए पैसे माँगने में भी शर्म आती थी, झिझक रहती थी। हमेशा लगा, जो हम पर ख़र्च किया जा रहा है, भाई-भाभी के बच्चों से छीना जा रहा है। बोझ होने का अहसास हमेशा बना रहता था। वैसे ऊपर से कोई बात कभी नहीं हुई, पर कई छोटी-छोटी बातें तो होती ही हैं, जो अनचाहे असर कर जाती हैं। पहली तनख़्वाह से मैंने ढेरों चीज़ें ख़रीदी थीं। भाई-भाभी, माँ, दादी, बच्चों सभी के लिए। बड़ा अच्छा लगा था तब।'

डॉ॰ जसिकी ने तर्क छोड़ा नहीं, 'धीरा, चलो मान भी लिया जाए कि वहाँ की स्थिति पर तुम्हारा अधिकार नहीं था, पर तुम्हारी अब की स्थिति और अब के फ़ैसले पर तो तुम्हारा अधिकार है। तुम चाहो तो कुछ भी कर सकती हो।'

वह डॉ॰ जसिकी पर विफर पड़ी थी। 'मेरी स्थिति पर मेरा इतना ही अधिकार है, जितना कि उन फिलिस्तीनियों का, जो पहले अपने घरों से निकाले गए और फिर एक शरणार्थी कैंप

से दूसरे में खदेड़े गए और फिर दीवार से लगाकर गोली से दाग दिए गए। उनकी नियति पर उनका अधिकार है? उनकी मनोवृत्ति ऐसी है कि लोगों को आमंत्रित करती है–आइए, हमें घरों से बेघर कीजिए, हमें और हमारे बच्चों को गोली से दाग दीजिए, हम आपकी गोलियों के शिकार होना चाहते हैं?'

'समानताएँ हैं धीरा, लेकिन चीज़ों को नाटकीय बना देने की प्रवृत्ति भी तो तुममें है। उन्हें बढ़ाकर देखने की। अपने-आपको तुम पराजितों में मिलाकर क्यों देखती हो?'

तुम जीत से उबर सकती हो।

तुम तलाक़ से उबर सकती हो।

और फिर वकील ने जीत के बॉस से बात की थी, लेकिन उसने कहा था, 'वैसे तो मुझे इस बेसहारा लड़की पर तरस आता है पर देखिए, उसने वक़्त-बेवक़्त फ़ोन कर मारिया को धमकियाँ दे बड़ी बेबुद्धि का काम किया है। वह आसानी से यह साबित कर सकता है कि यह औरत पागल है और साथ रहने के काबिल नहीं और उसकी मरिया को जान से मार डालने की धमकियाँ हम सबने सुनी हैं। वह उसे पागल करार दे सकता है।'

पागल करार दे सकता है ... धीरा को अपने शहर के पागल की याद आई थी, जहाँ-तहाँ नंगा खड़ा बच्चों के छेड़ने पर पत्थर उठा उन्हें डराता हुआ। पागल! पागल!

और फिर जीत दस साल की नौकरी छोड़ चला गया था। धीरा के हिस्से में आए थे चैकिंग एकाउंट के तीन हज़ार डालर, पुरानी कार और कुछ चीथड़ा फ़र्नीचर।

इस बार धीरा पूरे साल-भर के अंतराल के बाद आई है। वह की-पंचिंग वाली नौकरी से आगे नहीं बढ़ पाई थी। जैक उसे आफ़िस में ही मिला था। उसकी बीवी उसे छोड़ उसके दोस्त के साथ भाग गई थी। धीरा के पीछे लग गया था वह, 'मैं तुम्हारे पति की तरह दुख नहीं पहुँचाऊँगा। मैं तुम्हें बड़े प्यार से रखूँगा। मैं तुम्हें सब-कुछ से बचाऊँगा, तुम्हारी रक्षा करूँगा। तुम कहोगी तो यहीं शादी कर लेंगे। तुम कहोगी तो हिंदुस्तान जाकर करेंगे।

पहले कुछ महीने धीरा अपने को बचाती रही थी। फिर वह हार गई थी। इतना प्यार करता है। शुरू से ही डॉ॰ जसिकी ने समझाया था। 'धीरा, थोड़ा समय बीतने दो, थोड़ा समय बीतने दो ... धीरा, तुमने एक पति के चंगुल से निकलते ही जैक में दूसरा पति ढूँढ लिया है, इतनी जल्दी?'

और फिर तो उसने डॉ॰ जसिकी के पास जाना ही बंद कर दिया था। लगा था, बहुत कुरेदते हैं, बहुत आहत करते हैं बेवजह के सवाल पूछ-पूछ और फिर फ़ीस भी तो बहुत ज़्यादा लेते हैं।

जब डेढ़ साल के बाद धीरा ने शादी की बात चलाई तो जैक मुकर गया था, 'देखो धीरा, बहुत असमानताएँ हैं हम दोनों में– भाषा, संस्कृति की ... और अब तो मेरी पिछली बीवी भी मेरे दोस्त से अलग रह रही है और फिर मेरे बच्चे। हमारा वह सूत्र तो रहेगा ही। मैं एक ही ग़लती दोबारा नहीं करना चाहता। हम और दूसरों के साथ भी क्यों न हिलें-मिलें... हम और तुम दोनों।'

धीरा इस बार पहुँची थी, ग़ुस्से से उबलती हुई, रोती हुई।

'तुम्हारा यह कहना कि उसने तुम्हारा इस्तेमाल किया है, ठीक नहीं। इस पिछले लावारिसी के साल में उसने तुम्हें सहारा दिया, जीत को भूलने में मदद की। पति द्वारा छोड़ी धीरा को सहारा चाहिए था और पत्नी द्वारा छोड़े जैक को आश्रय। तुमने उसे सँभाला और उसने तुम्हें। तुम दोनों को एक-दूसरे की ज़रूरत थी। यह ज़रूरी नहीं कि तुम दोनों अब एक-दूसरे के साथ बँध जाओ।'

'पर वह तो कहता था, हम शादी करेंगे। हमेशा हमेशा के लिए साथ रहेंगे।'

'कमज़ोर व्यक्ति बहुत कुछ कहता है और सशक्त होने पर सभी कुछ भुलाया जाता है।

तुम जीत से उबर चुकी हो ...

तुम जैक को भी भूल जाओगी।

'धीरा, कहाँ खो गई थी?'

'जानते हैं, मुझे क्या याद आ रहा है। वह टेलीविज़न कार्यक्रम, जिसमें दिखाया गया था कि केकड़े की एक क़िस्म होती है, जिसमें नर हमेशा घूमता रहता है ऐसी मादाओं की तलाश में, जिनकी केंचुल उतरी रहती है। वह पहले उन्हें आश्रय देता है, अन्य जानवरों से बचाता है और जब कमज़ोर मादा उस पर आश्रित हो, सुरक्षित महसूस करने लगती है तो अचानक वार कर उस पर ज़बरदस्ती कर लेता है और आहत घायल मादा को छोड़ अन्य केंचुल उतारी मादाओं की तलाश में निकल पड़ता है।'

डॉ॰ जसिकी हँसे थे, 'एक और टी॰वी॰ प्रोग्राम वह भी था, जहाँ मकड़ी की एक क़िस्म उस ज़बरदस्ती के बाद नर को ज़िंदा निगल जाती है।'

'आप चाहते हैं, मैं वही मकड़ी बन जाऊँ?'

'नहीं-नहीं, केकड़े और मकड़ी के बीच और भी रास्ते हैं।'

❐ 2645 Midway Road
Decatur
GA 30030-4577 USA

मेहमान

डॉ॰ उषादेवी कोल्हटकर

जन्म 24 मार्च, अहमदनगर (महाराष्ट्र) में; शिक्षा–पीएच॰डी॰ (समाजशास्त्र) पुणे विश्वविद्यालय एवं पीएच॰डी॰ (समाजशास्त्र) मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी (अमेरिका), अमेरिका एसोसिएशन आफ़ यूनिवर्सिटी वीमेन की फ़ैलोशिप पर पोस्ट डाक्टरल रिसर्च; सन् 1977 से न्यूयार्क (अमेरिका) में रह रहीं उषादेवी कोल्हटकर की कलम हिंदी एवं मराठी दोनों भाषाओं में समान अधिकार से चलती है। वे लोकप्रिय कथा-लेखिका एवं उपन्यासकार हैं। मराठी काव्यसंग्रह 'उन्मेष' एवं पत्रिका 'रंगदीप' में संपादन सहयोग भी किया है। मराठी मासिक पत्रिका 'अंतराल' में, जो वेब पर उपलब्ध है, इनकी रचनाएँ नियमित प्रकाशित होती हैं। हिंदी के पाठकों की भी वे प्रिय लेखिका हैं; कृतियाँ–चाबी का गुड्डा, अँधेरी सुरंग में, बटर टाफ़ी एवं बूढ़ा डालर (कहानी-संग्रह); उपन्यास–जमी हुई बर्फ़, खोया हुआ किनारा; मराठी में–अमेरिका कितना बड़ा, कितना छोटा (संस्मरण); कहानी संकलन–'भावनाओं के खेल, फूलों का घर नहीं होता, स्पंदनों का किमिया तथा कादंबरी; कई पुरस्कारों से सम्मानित।

मेरा नाम है फ़्लफ़ी। मैं एक खिलौना हूँ। एक ख़ूबसूरत, गोल-मटोल, हर बच्चे को मोहित करनेवाला 'टेडी बेअर' (Teddy Bear)। किंडरगार्टन क्लास की फ़ुर्तीली अध्यापिका मेरी बेथ ने अपने दो साल के बेटे के लिए मुझे खिलौनों की दुकान से ख़रीदकर घर लाने की मेहरबानी की। एक दिन मेरी बेथ जी ने तय किया कि मैं हर छात्र के घर दो दिन का मेहमान बनकर जाऊँगा। घर में आए हुए मेहमान की आवभगत कैसे की जाती है, यह बात बच्चों को सिखाने के मक़सद से यह उपक्रम शुरू हुआ। उपक्रम का साधन मुझे बनाया गया और हर नन्हे बच्चे के घर मैं मेहमान बनकर जाने लगा।

रेचल के घर जाते ही उसने मुझे किचन टेबल पर बिठाकर मुझसे बातें करते-करते माँ की मदद से केक बनाया और मेरा जन्मदिन न होते हुए भी मेरा जन्मदिन मनाया। मैं रेचल के खिलौनों के साथ खेला। उसकी गोद में बैठकर पूरे घर में घूमता रहा। आँगन में बैठा। कैंडी और बिस्कुटों की दुकान तक घूम आया। रात को रेचल के परिवार के साथ बैठकर खाना खाया और सोने से पहले, रेचल के कमरे में 'The bear went over the mountain' यह गीत गाते-गाते रेचल का हाथ पकड़कर नृत्य भी किया। दो दिन के बाद स्कूल जाने से पहले रेचल की माँ ने मेरी बेथ जी द्वारा दी हुई कापी में मैंने और रेचल ने दो दिनों में क्या-क्या किया यह लिखकर दिया और परिवार में सबको 'बाय' कहकर मैं स्कूल लौट आया।

क्रिस्टोफ़र के घर में गिनती दोहराने वाला सफ़ेद ख़रगोश मुझे बेहद पसंद आया। सोने से पहले सबने मिलकर, बाइबल पढ़कर प्रार्थना करते हुए जब मेरे नाम का ख़ास ज़िक्र किया तब तो मैं सचमुच रो पड़ा। स्कूल लौटने से पहले, क्रिस्टोफ़र ने मेरे कान में कहा, 'मैं तुम्हें मिस करूँगा फ़्लफ़ी।' तो मुझे बहुत अच्छा लगा। ऑड्रेना ने तो कमाल किया। उसके घर जाते ही उसने मुझे अपनी बार्बी गुड़िया के नज़दीक बिठाया, जिस बार्बी गुड़िया को छूने तक की किसी को इजाज़त नहीं थी। मुझे बाय कहते वक़्त आड्रेना ने मुझे आलिंगन देकर प्यार से चूम लिया और थैली में बैठकर मैं चला गया समृद्ध के घर। समृद्ध के पास ढेर सारे खिलौने थे। मम्मा-पापा, लाड़-दुलार करनेवाले नाना-नानी थे। जब वह दो साल का था, तबसे उसने सँभालकर रखे हुए अपने सबसे प्यारे टेडी बेअर के साथ मेरा परिचय कराते हुए कहा, 'वह नन्हा टेडी बेअर उसके साथ फ़्रैंकफ़र्ट, लंदन, दिल्ली और दार्जिलिंग तक घूमकर आया है।' हम दोनों ने खिड़की में बैठकर गिरती हुई बर्फ़ देखते हुए कई बातें कीं। दूसरी रात ड्रॉइंग-रूम में, सोने का इंतज़ाम करने के लिए सोफ़ा-कुर्सियाँ एक तरफ़ हटाकर क़ालीन पर बड़ा-सा गद्दा बिछाया। गद्दे पर लाल रंग की छतरी खोलकर रखी और हमारा ख़ेमा बन गया। हम दोनों ने और समृद्ध के सारे खिलौनों ने वह रात ख़ेमे में बिताई। इस कैंपिंग का हम दोनों को बड़ा मज़ा आया। दो दिन हँसी-ख़ुशी में बीते और थैली में बैठकर मैं स्कूल लौट आया।

सुमीत की तो बात ही कुछ और थी। उसने मेरे लिए टी-शर्ट और गुब्बारा ख़रीदा। साइकिल पर बिठाकर मुझे जी भर के घुमाया। कार में बिठाकर मेरी तसवीरें खींचीं। रात को सोने से पहले, मेरे दाँत नहीं थे, फिर भी नया ब्रश लेकर मेरे दाँत ब्रश करने का नाटक करते हुए, सुमीत खिलखिलाकर हँसता रहा। बिस्तर पर लेटकर, रज़ाई के साथ जी भर के मस्ती करने के बाद उसने मुझे एक मज़ेदार कहानी पढ़कर सुनाई। कौनसी बास्केट

बॉल टीम अच्छा खेलती है, उसे हॉकी खेलना क्यूँ पसंद है, बड़ा होने के बाद वह क्या बनेगा, ऐसी न जाने कितनी सारी बातें करते हुए, मुझे सीने से भींचकर जब वह नन्हे फ़रिश्ते की तरह सो गया, तब उसकी कुछ ज़्यादा ही ममता से सचमुच मेरा जी घबरा गया। सुमीत की माँ रेडियो सुन रही थी। कोई गायक, भारतीय भाषा में गा रहा था, 'हमसे अच्छी फ़रिश्तों की बसर क्या होगी ...' मैं स्पर्श की भाषा समझ सकता हूँ। उस गायक के शब्द-स्पर्श में खुशी, राहत, तृप्ति, ऐसे मिलेजुले सुखदायी भावों को महसूस किया और सुमीत का दृढ़ आलिंगन सहते हुए मैं मीठी नींद सो गया।

ट्रेसी के घर गया। ट्रेसी की थकान उसके मुरझाए हुए चेहरे पर झाँक रही थी। स्कूल से थककर आई हुई ट्रेसी की ओर देखकर भी उसकी माँ ने उसकी पूछताछ नहीं की। न ही उसे खाने-पीने को दिया। शाम के छह बजे किसी ने ट्रेसी के कमरे की खिड़की पर हलके से दस्तक दी। ट्रेसी के खिड़की खोलते ही, एक औरत ने उसके हाथ में एक सैंडविच और एक सेब थमाकर गुडनाइट कहा और जल्दी में वह चल भी दी। मैंने देखा, ट्रेसी की आँखों में उभरी कृतज्ञता की भावना आँसुओं से भीग गई थी। ट्रेसी ने मुझसे कहा, 'वह दयालु औरत उसकी पड़ोसन थी।' स्कूल से घर लौटने के बाद पूरे तीन घंटों में भूखी-प्यासी ट्रेसी को हिम्मत नहीं हुई कि वह रसोईघर में जाकर कुछ खा-पी ले। शाम गहरी होती गई और मुझे सीने से लगाकर ट्रेसी ने बताया कि यह घर उसका नहीं है। उसके सगे माँ-बाप के घर उस पर बेहद ज़ुल्म हुए, हर दिन मारपीट होती रही। एक बार बेवजह उसका हाथ तक जलाया गया। जब लगातार तीन दिन उसे भूखा-प्यासा रखा गया, तब भूख से परेशान होकर, डरते-डरते उसने 911 नंबर पर फ़ोन किया और पुलिस से कहा कि उसे बहुत भूख लगी है। पुलिस आई। नन्ही-सी बच्ची की ठीक से परवरिश नहीं की, उसको जान से मारने की कोशिश की, इस जुर्म में माँ-बाप गिरफ़्तार किए गए और ट्रेसी को अस्पताल पहुँचाया। अस्पताल में, बच्चों के वॉर्ड में ट्रेसी को छह महीने रहना पड़ा, क्योंकि ठीक होने पर भी उसे कोई फॉस्टर पेरेंट्स नहीं मिले थे। ह्यूमन रिसोर्सेस डिपार्टमेंट ने आख़िर ट्रेसी को इस औरत के हवाले किया, जो अपनी अभिनयकुशलता से सरकारी अधिकारियों की आँखों में धूल झोंककर ट्रेसी की फॉस्टर-मदर बनकर उसे अपने घर ले आई। इस सारे गोलमाल में ट्रेसी की परवरिश के लिए सरकार से मिलनेवाले पैसे वसूल करना, यह एक ही हेतु था, इसलिए इस छोटी बच्ची की देखभाल, खाना-पीना, स्कूल, पढ़ाई कम-से-कम ज़रूरी चीज़ों को महत्त्व देने की, अपनी ज़िम्मेदारी को गंभीरता से लेने की इस औरत को कभी ज़रूरत ही महसूस नहीं हुई। प्रेम, वात्सल्य, माया-ममता इन भावनाओं के अंतरंग से इस औरत का दूर-दूर तक का भी कोई वास्ता नहीं था।

ट्रेसी की पड़ोसन एक भारतीय महिला बड़ी ही दयालु और भली औरत थी, इसलिए ट्रेसी का दुबला शरीर अब तक उसकी साँसों को सँभाले हुए था। पड़ोसन रोज़ रात, ट्रेसी को बैडरूम की खिड़की से खाना दे जाती थी। पड़ोसन की बेटी ट्रेसी के ही स्कूल में पढ़ती थी। वह अपने साथ ट्रेसी के लिए भी दोपहर का खाना ले जाती थी और लंच रूम में ट्रेसी से मिलकर दोनों मिल-बाँटकर खाना खाती थीं। छुट्टी के दिन जब कभी भूख कुछ ज़्यादा ही सताने लगती थी, तब फ़ॉस्टर-मदर का ग़ुस्सा, चीख़ना-चिल्लाना सहती हुई, ट्रेसी रसोई में पहुँच जाती। जल्दी-जल्दी फ्रिज़ खोलकर दूध, ब्रेड, सेब या हाथ में आई कोई भी खाने की चीज़ लेकर दौड़कर अपने कमरे में पहुँच जाती थी। अपने कमरे में आकर कपड़ों की अलमारी में छुपकर अपनी भूख मिटाते हुए बेचारगी छा जाती थी उसके चेहरे पर। नहीं जानती थी ट्रेसी कि उसके साथ ही ऐसा क्यों हो रहा है? इस ख़याल से कई बार इस अभागी लड़की का रो-रोकर ऐसा हाल हो जाता था कि उसके अकेलेपन को भी अपने-आप पर तरस आने लगता था। ट्रेसी के नसीब में न अपना घर था, न आँगन, न माँ-बाप, न भाई-बहन, न तीज-त्योहार के ख़ुशनुमा अवसर। रसोई से खाने की भीनी-भीनी ख़ुशबू आ रही है, माँ उसे प्यार से खाना खाने के लिए बुला रही है, यह सपना कहीं खो गया था उसके लिए। वैसे देखा जाए तो घर एक बहुत ही प्यारी, सुरक्षित, बिलकुल अपनी निजी जगह है, परंतु फ़ॉस्टर-होम नामक इस घर की दीवारें हर वक़्त ट्रेसी को अजनबी आँखों से घूरती रहती थीं, डराती रहती थीं। काँप जाती होगी उसकी नन्ही रूह इस आतंक से, पर वह बेचारी असहाय, निर्बल बच्ची करती तो क्या करती?

अनुभवों की क्रूरता, कठोरता से इस नन्ही-सी जान के कोमल पाँव काँप नहीं उठे, बल्कि वह ज़्यादा ही समझदार बन गई थी। शनिवार, इतवार या और छुट्टी के दिन बिल्डिंग के बाक़ी बच्चे पार्क में खेलने जाते थे। सिनेमा या नाटक देखने जाते, स्केटिंग या तैरना सीखने जाते थे। लौटते वक़्त ज़िद करके माँ-बाप के साथ फ़ास्ट-फ़ूड-रेस्टोरेंट में जाकर 'मनोरंजक इनामी भोजन' (Happy Meal) खाकर हैपीमील के साथ मिलनेवाले खिलौने के साथ खेलते हुए, खुशी-खुशी उछलते-कूदते हुए घर लौटकर आते थे। उन्हीं छुट्टी के दिनों में ट्रेसी, फ़ॉस्टर-मदर की नज़र बचाकर, अपार्टमेंट बिल्डिंग में रहनेवाली एक बूढ़ी औरत के घर जाकर थोड़ा-सा काम करती थी। अपने नन्हे, दुबले हाथों से जैसा भी बन पड़े अकेली वृद्धा के घर की सफ़ाई करती थी। कुर्सी पर खड़ी रहकर सिंक में रखे हुए बर्तन

माँजती थी। प्लास्टिक के ग्लव्ज़ पहनकर बाथरूम की सफ़ाई भी कर देती थी। वृद्धा ट्रेसी को कुछ पैसे देती थी। उन पैसों से ट्रेसी लंच-रूम में कभी पोटेटो चिप्स का पैकेट, जूस की बोतल या दूध का लॉलीपॉप ख़रीदकर ख़ुश हो जाती थी। ख़ुद कमाए हुए थोड़े-से पैसे ट्रेसी की नज़र में बहुत बड़ी रक़म सही, उसे किसी खिलौने की दुकान में जाने की इजाज़त नहीं देती थी। फिर भी हफ़्ते में एक-आध दिन ही सही, ख़ुशी का मुँह ताकना नहीं पड़ता, इसी में ट्रेसी संतुष्ट हो जाती थी।

महीने में एक बार सरकारी दफ़्तर से सोशल वर्कर ट्रेसी का हालचाल पूछने उसके घर आती थी। उन दो दिनों में ट्रेसी का ख़ास ख़याल रखा जाता था। वह औरत ख़ुद अपने हाथों से बाक़ायदा अपार्टमेंट की कुछ ज़्यादा ही ध्यान से सफ़ाई करके हर चीज़ चमका देती थी। ट्रेसी के बिस्तर की चादर और तकिए का गिलाफ़ बदला जाता। बाथरूम की सफ़ाई होते ही, वहाँ मिकी माउस की डिज़ाइन का साफ़, सुंदर तौलिया रखा जाता। छोटे बच्चों के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला शैम्पू, साबुन, तेल, पाउडर, क्रीम, ब्रश सारी चीज़ें अपनी सही जगह पर रखकर बाथरूम में पीले रंग की रबड़ की बतख रखना भी फ़ॉस्टर-मदर नहीं भूलती थी। जिस दिन सोशल वर्कर को आना होता था, वह चालाक औरत अपने हाथों से ट्रेसी को अच्छी तरह से नहलाती थी। नया फ्रॉक पहनकर जब ट्रेसी सोशल वर्कर से मिलती थी, 'तब ट्रेसी को अच्छी परवरिश के लिए इस घर का परिवेश अत्यधिक अनुकूल है', इस प्रकार की राय फ़ॉर्म पर दर्ज हो जाती और कॉफ़ी पीकर, सोशल वर्कर चली जाती थी। सजी-धजी ट्रेसी की आँखों में छिपी पीड़ा और वेदना को पढ़ने का कष्ट उठाने की सोशल वर्कर को कोई ज़रूरत महसूस नहीं होती थी, क्योंकि उसकी नज़र को तनख़्वाह मिलने की तारीख़ के सिवा कुछ ज़्यादा पढ़ने की आदत नहीं होती थी। महीने के इन दो दिनों के अपनेपन के व्यवहार के सहारे महीने के बचे हुए दिनों में अपने आपको फ़ॉस्टर-मदर कहलवाकर अपनी ममता की झूठी नुमाइश की शेख़ी बघारनेवाली फ़रेबी औरत का कठोर व्यवहार सहते हुए ट्रेसी अपनी बदक़िस्मती की खरोंचों को सहलाते हुए जी रही थी। अपनी उम्र से कहीं बड़ा दर्द सहकर हँस रही थी बेचारी।

ट्रेसी ने मुझे सीने से लगाकर अपनी नन्ही-सी ज़िंदगी की बड़ी दुखभरी कहानी जब मुझे सुनाई, तब क्लास के दूसरे बच्चों के घरों में देखा हुआ ख़ुशनुमा माहौल याद आकर मेरी आँखें भर आईं। ट्रेसी के दुबले हाथों ने मुझे यूँ कसके पकड़ रखा था कि मुद्दत के बाद मिला हुआ साथी कहीं उसे छोड़कर चला न जाए। पलभर के लिए मुझे लगा, काश मैं भूख मिटाने का लड्डू होता, प्यास की तृप्ति का पात्र होता, मेरे स्पर्श में संवेदनाएँ होतीं, मैं बोल पाता। उसके थके तन-मन को, उसकी भूख-प्यास को, उसके अकेलेपन को कुछ न दे पाने की असहायता थी मेरे पास, और कुछ भी नहीं था। मेरा जी बहलाने के लिए ट्रेसी मुझे घर के बाहर घुमाने ले गई। वैसे भी उसे अकेले घर से ज्यादा दूर जाने की इज़ाज़त नहीं थी। हम दोनों पड़ोसी के घर की सीढ़ी पर बैठ गए। पड़ोसी के छोटे-से बग़ीचे में चिड़ियाँ आपस में बतिया रही थीं। रंग-बिरंगे फूलों की महक अच्छी लग रही थी। 'फ़्लफ़ी, तुम्हें नहीं लगता, चिड़ियों को देने के लिए कम-से-कम हमारे पास ब्रेड का छोटा-सा टुकड़ा होना चाहिए था।' मेरे गाल पर अपने होंठ रखकर उसकी आँखें निरभ्र नीले आसमान को देखने लगीं। आसमान की ओर देखते-देखते उसकी नज़र सामने के लंबे दरख़्त की एक टहनी पर जा रुकी। उस टहनी में एक छोटा-सा खिलौना हवाई-जहाज़ अटक गया था। पीले रंग का गुलाबी पंखा और गुलाबी डिज़ाइन का वह हवाई-जहाज़ ट्रेसी को इशारे करने लगा। पलभर के लिए उसकी आँखें सपनीली हो गईं। ट्रेसी के कमरे में कम-से-कम आज मैंने सिर्फ़ टूटी हुई गुड़ियाँ देखी थीं। ख़ूबसूरत खिलौने होंगे भी तो सोशल वर्कर की विज़िट तथा सरकारी तनख़्वाह वसूली, इन ख़ास बातों के लिए बंद अलमारी के अँधेरे में छुपे होंगे। 'फ़्लफ़ी, अगर तुम्हें पंख होते, क्या तुम वह हवाई-जहाज़ मुझे ला देते?' ट्रेसी मुझे सहलाते हुए पूछ रही थी। ममता के लिए तरसता हुआ उसका स्पर्श मेरे बेजान अस्तित्व में बहुत कुछ ढूँढ रहा था। उसी वक़्त फ़ोन कंपनी की बड़ी वैन साइडवॉक के पास आकर रुक गई। वैन से ट्रेसी के परिचित एक वृद्ध इंसान उतर गए। उनसे मेरा परिचय कराते हुए वैन पर बँधी हुई सीढ़ी को हसरतभरी निगाह से देखते हुए बड़े ही याचना-भरे स्वर में ट्रेसी ने कहा, 'दादा जी, फ़्लफ़ी आज मेरे यहाँ मेहमान बनकर आया है। उसे देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं। क्या आप अपनी सीढ़ी पर चढ़कर, उस पेड़ की टहनी में अटका हुआ हवाई-जहाज़ मेरे लिए निकाल सकेंगे? प्लीज़ दादा जी, प्लीज़!' ट्रेसी के बालों को सहलाकर थके हुए दादाजी ने वैन पर बँधी हुई सीढ़ी निकाली, पेड़ के सहारे खड़ी की और ट्रेसी

जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार

लेखक :
डा॰ अशोक कुमार
पृष्ठ 288, मूल्य 350.00
प्रकाशक :
हिंदी साहित्य निकेतन
बिजनौर (उ॰प्र॰)

को हवाई जहाज़ निकालकर दे दिया। यह भी कम न था कि ऐसे सहृदय पड़ोसियों के कारण ट्रेसी का बचपन थोड़ा-बहुत हँस तो लेता था। 'थैंक्यू, दादाजी, ज़िंदगी-भर मैं आपका यह अहसान नहीं भूलूँगी। आज आपने मुझे और फ़्लफ़ी को ढेर सारी खुशियाँ दे दी हैं। 'थैंक्यू, थैंक्यू।' कहते हुए ट्रेसी ने प्यार से दादाजी का हाथ चूम लिया। दादाजी की आत्मीयता ने मुझे छू लिया। चलो, आज के दिन ट्रेसी की तड़पती, तरसती हुई बालसुलभ इच्छाओं द्वारा खटखटाया गया एक दरवाज़ा तो खुल ही गया था। ट्रेसी की झोली में हवाई-जहाज़ उतरा था।

हम दोनों घर लौट आए। बाथरूम में जाकर ट्रेसी ने धूल से सने हुए हवाई-जहाज़ को अच्छी तरह से धोया। तौलिये से पोंछा। ड्रॉअर में रखा हुआ लाल, पीले, नीले फूलों को नक़्क़ाशी का बढ़िया-सा पेपर निकाला और उस काग़ज़ में टेप लगाकर मेरे लिए तोहफ़ा बाँध दिया। तोहफ़ा अपनी गुड़िया के तकिये के नीचे छुपाते हुए उसने शोख़ी से हँसकर कहा, 'देखो फ़्लफ़ी, यह तोहफ़ा तुम्हारे लिए है मगर सुबह तक बिलकुल मत देखना। सुबह जब अपना तोहफ़ा देखोगे, तब ताज्ज़ुब के मारे खुशी से उछलने का नाटक करना भी मत भूलना, ठीक है ना?' यह कहकर मासूम-सी बच्ची बाथरूम में गई, दाँत ब्रश किए और पुरानी नाइट-ड्रेस पहनकर बिस्तर पर आ बैठी। मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर उसने प्रार्थना की, 'हे भगवान, फ़्लफ़ी की मैं ठीक से आवभगत नहीं कर सकी, इसलिए मुझे क्षमा करना।' 'गुडनाइट फ़्लफ़ी' कहकर उसने मुझे चूमा और मुझे सीने से लगाकर वह सोने का प्रयास करने लगी।

ट्रेसी के कमरे में नीले रंग की सुखद बरसात करता हुआ नाइट-लैंप नहीं था। उसकी ज़िंदगी में रोज़ रात सोने से पहले परीकथा या लोरी सुनाने के लिए माँ-पिता के रूप में माया-ममता, प्यार-दुलार, वत्सलता-सुरक्षा नहीं थी। उसके साथ थी परमात्मा की समक्षता और उसका मायूस न होनेवाला मासूम मन। एक नन्ही-सी जान अपने दुर्बल शरीर में ममता की हसरत लेकर जी रही थी, बिल्कुल अकेली। ट्रेसी का अकेलापन, दुख-दर्द देखकर मेरा मन व्यथित हुआ। पेड़ की टहनी में अटके हुए हवाई जहाज़ को घर दिलानेवाले दादा जी भी अगर मिल जाते हैं तो ट्रेसी जैसी सच्ची, समझदार, कोमल, प्यारी-सी बच्ची के हिस्से में यह वनवास क्यों? पहली बार अपने बेजान खिलौना होने का, अपनी असमर्थता का मुझे बेहद अफसोस हुआ, दुख हुआ। आख़िर ट्रेसी को मैं मिला भी तो सिर्फ़ दो दिन का मेहमान ही बनकर।

❐ 33-45, 73rd Street
Jackson Heights, Newyork
Ny 11372-1105, USA
E-mail : vijaykolhatkar@attglobal.net

शोध
दिशा

के

आजीवन सदस्य बनिए
और पाइए हिंदी साहित्य निकेतन से
प्रकाशित पुस्तकें आधे मूल्य में।

शोध-दिशा के पाठकों के लिए
एक विशेष योजना

शोध-दिशा का आजीवन सदस्यता-शुल्क 1100 रुपए है।

यदि आप **शोध-दिशा** की आजीवन सदस्यता प्राप्त करते हैं तो हिंदी साहित्य निकेतन द्वारा प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक आपको आधे मूल्य में उपलब्ध हो सकेगी।

हिंदी साहित्य निकेतन की पुस्तकों की सूची पत्रिका के अंत में प्रकाशित की गई है।

कृपया पत्रिका के लिए अपना बैंक ड्राफ़्ट **'शोध-दिशा'** के नाम प्रेषित करें।

पुस्तकों के लिए अपना बैंक ड्राफ़्ट **'हिंदी साहित्य निकेतन'** के नाम से भेजें।

हिन्दी साहित्य निकेतन
16 **साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)**
फोन : 01342-263232, 09368141411

लकीर

उमेश अग्निहोत्री

उससे हाथ मिलाते वक़्त दिनेश के मन में एक सवाल था कि वह हिंदोस्तानी है या पाकिस्तानी, और इसी वजह से उसके हैंडशेक में वह गर्मी नहीं थी, जो होनी चाहिए थी। हाथ मिलाने की वह महज़ औपचारिकता थी, एक उपक्रम-भर। बाद में उसने बताया था कि उसका नाम अनवर है, अमेरिका में पिछले दस वर्षों से है, अमेरिका का नागरिक बन चुका है और हफ़्ते-भर पहले उसने अपनी बीवी-बच्चों को भी यहीं बुला लिया है...

बातचीत में दिनेश ने भी अपने परिवार के बारे में बताया कि वह भी बीवी-बच्चों के साथ कुछ महीने पहले अमेरिका आया है, तीन साल का कांट्रेक्ट है, उसके बाद वापस लौट जाने का इरादा रखता है ...

जाने-अनजाने या शायद जानबूझ कर ही दोनों ने बातचीत में अपने देशों का नाम नहीं लिया था।

जहाँ तक दिनेश की बात थी, उसके नाम से ही अंदाज़ा लग सकता था कि वह भारत से ही होगा, लेकिन अनवर? वह भारत से भी हो सकता था और पाकिस्तान से भी, क्योंकि मुसलमान तो दोनों तरफ़ हैं। लेकिन यह बात कि अनवर पाकिस्तान से ही है, इसे भी साफ़ होने में बहुत देर न लगी। वजह थी अनवर के उर्दू बोलने का पंजाबी लहजा, जो दिनेश ने किसी मुसलमान के मुख से इससे पहले नहीं सुना था। दिल्ली में रहते हुए जिन मुसलमानों को उसने जाना था, वे अधिकतर पुरानी दिल्ली के थे, जिनके शीन-क़ाफ़ बहुत साफ़ थे।

'अजी, एक बार अमेरिका आ जाने के बाद कौन लौटता है?' अनवर हँसा। 'मैं भी जब पैले-पैल आया था, रोज़ सोचता

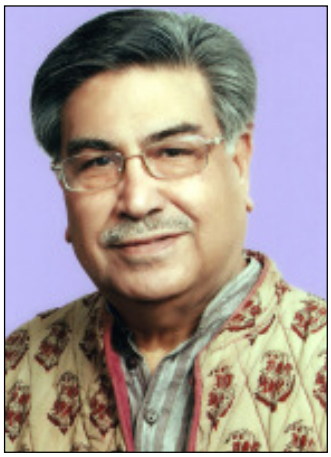

जन्म 26 सितंबर, नई दिल्ली में; शिक्षा–बी॰ए॰ दिल्ली विश्वविद्यालय; विधाएँ– नाटक, कहानी; कृतियाँ–गॉड गिवन फ़ैमिली, वाह रे हम और हमारे ग़म; विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित; रंगकर्मी, अधिकतर जीवन रेडियो और टेलीविज़न की दुनिया में, पहले भारत में और फिर अमेरिका में।

था कि एक दिन वापस चला जाऊँगा। चला भी गया। सब-कुछ बेच-बाच कर। पर लौट आया। पूछो क्यों? वहाँ बाक़ी तो सब ठीक था, पर वहाँ जा के कुछ महीनों बाद यहाँ के आराम याद आने लगे। होता यह है कि आने के बाद पहले साल आदमी अपने वतन को बहुत याद करता है, सोचता रहता है लौट जाऊँगा। अगले साल वतन जाता है। वहाँ जाके यहाँ के आराम याद आने लगते हैं। लौट आता है। फिर न वहाँ अच्छा लगता है, न यहाँ। तब सोचता है जब दोनों जगह ही मन नहीं लगना तो फिर यह मुलक ही क्या बुरा है। फिर वह यहीं रहता चला जाता है। जिस्म यहाँ, दिल वहाँ।'

जब अनवर हँसा था तो दिनेश को लगा था कि उसकी हँसी में तंज़ है। लेकिन पूरी बात सुनकर लगा कि अनवर की बात है दिलचस्प। वह उससे और बातें करने लगा। बातें करते-करते वह ख़ुद को अनवर के क़रीब महसूस करने लगा। शुरू में यह सोचकर कि वह एक दुश्मन देश का नागरिक है, दिनेश जो उससे बातचीत में एक तरह की सावधानी बरत रहा था ... वह छँटती चली गई थी। अनवर भी और खुलता चला गया, और न जाने कब उनकी बातचीत में उनके देशों के नाम सहज भाव से भी लिए जाने लगे। कराची का ज़िक्र आया तो दिनेश ने बताया कि उसकी बीवी कराची में पैदा हुई थी और वहाँ दूसरी-तीसरी जमात तक पढ़ी भी थी।

'लाहौर कैसा है' दिनेश ने पूछा। लेकिन उसने यह प्रश्न इसलिए नहीं पूछा था कि अनवर उत्तर दे ही। बल्कि यह बताने के लिए कि उसकी अम्माँ जी का जन्म लाहौर का है। तभी तो अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह यह कहता चला गया था–अम्माँ जी लाहौर की हैं, उनकी शादी लाहौर में हुई, और तो और मेरी सास भी लाहौर में पैदा हुई थीं और आज भी दोनों औरतें लाहौर के अनारकली बाज़ार को याद करती हैं। ...'

'आपने हिंदोस्तान देखा है?'

'बचपन में अपने वालिद के साथ एक दिन दिल्ली में बिताया था। किसी काम से गए थे। वहाँ लालक़िले के पास बाज़ार है न चाँदनी चौक, वहाँ एक होटल में रुके थे ... वहीं एक सिनेमा भी देखा था नॉवल्टी में, बस इतनी धुँधली-सी याद है। लेकिन हिंदोस्तान देखने की हसरत ज़रूर है। बल्कि पाकिस्तानी वज़ारत-ए-ख़ारजा में मैंने फ़ॉरन-सैक्रेटरी से एक बार

गुज़ारिश भी की थी कि भारत की पोस्टिंग दिलवा दें। वह कहते तो रहे कि करा दूँगा, पर करवाई कभी नहीं। अब इंशा अल्लाह अमेरिका की शहरियत मिल गई है, फ़ैमिली भी आ गई है। सबसे पहले हिंदोस्तान जाऊँगा।'

और इस क्षण, जो बात दिनेश शायद अभी पाँच-दस मिनट बाद कहता, अनवर ने कह डाली, 'यार कभी भाभी जान और बच्चों को लेकर हमारे ग़रीबख़ाने में आओ न?'

'ज़रूर' दिनेश ने जवाब दिया, लेकिन कोई वादा नहीं किया। मन में कहीं संशय था कि अनवर ने महज़ औपचारिकता निभाई है। पर उसने अनवर से अलग होते हुए उसे एक नज़र ग़ौर से ज़रूर देखा और महसूस किया कि वह एक अच्छा इंसान है, मोहब्बती इंसान। साफ़ दिल, साफ़ गो, जो शायद वॉशिंग्टन में उसका ऐसा मित्र बने, जैसे मित्र की कमी उसे तबसे ही महसूस हो रही थी, जबसे वह भारत से आया था। उसे अनवर का चेहरा भी अपने चेहरे जैसा लगा। लगभग वैसी ही भारी मूँछें, अपने जैसी ही भारी पलकें, लेकिन अपने से ज़रा ज़्यादा साफ़ रंग, ज़रा ज़्यादा भारी चेहरा और सिर पर कुछ ज़्यादा घने बाल। चेहरे पर कुछ ऐसा रोब-दाब और चाल-ढाल में कुछ ऐसी शान कि दो-तीन मुलाक़ातों के बाद दिनेश ने उसे मज़ाक़ में पहले हुज़ूरे-अनवर और बाद में सदर अनवर का ख़िताब दे डाला था।

अनवर का निमंत्रण औपचारिक नहीं था। एक ही कंपनी में सहयोगी होने की वजह से रोज़ ही मुलाक़ात होती, कभी-कभी दोनों साथ-साथ लंच करने के लिए पास के मॉल में भी निकल जाते। बातों के दौरान अनवर पूछता, 'कब आ रहे हो?' जवाब में दिनेश आज, कल करता। कभी कहता कार ले लूँ, तब आऊँगा, कभी कहता कार चलानी सीख लूँ, फिर आऊँगा। अनवर कहता, मियाँ टाल रहे हो। मुझे जानते नहीं, किसी दिन तुम्हारे घर ही आ धमकूँगा। अभी इतना अमरीकी भी नहीं हुआ हूँ कि दावतनामे का इंतज़ार करता रहूँ।

और एक दिन दरवाज़े पर दस्तक सुनकर दिनेश ने दरवाज़े में लगे पीपहोल से झाँककर जो देखा तो पाया बाहर मिस्टर और मिसेज़ अनवर खड़े हैं। दरवाज़ा खुलते ही अनवर ने कहा, 'सलाम, भाभी जान', और फिर वह दिनेश की बीवी से कुछ यूँ मुख़ातिब हुआ मानो उससे बरसों की जान-पहचान हो, उसका असली देवर हो और अचानक मिलने चला आया हो।

'भाभी, आपके शौअर तो हमारी आपसे मुलाक़ात कराने में आन्नाकानी कर रहे थे, हमने सोचा हम ही पैल करें। ठीक है बिना फ़ोन किए आ गए, पर आप जानती हैं हमारी कल्चर में बता के आने का रिवाज नहीं है।'

वह हँसते-हँसते कहता चला गया, 'यह है मेरी पत्नी ... पत्नी कहते हुए वह कुछ अतिरिक्त ही हँसा जैसे हिंदी बोलने का मज़ा ले रहा हो ... जमीला। ज़रा देहातन क़िस्म की औरत है।' और फिर ज़ोर से ठहाका लगाते हुए उसने बीवी को प्यार से पास खींच लिया।

दिनेश ने इससे पहले किसी मुसलमान को किसी ग़ैर की मौजूदगी में अपनी बीवी को इस तरह अपने साथ चिपकाते हुए नहीं देखा था। वह हैरान हुआ। फिर उसे लगा कि कोई इस तरह का आचरण किसी अंतरंग मित्र के सामने ही कर सकता है। निस्संदेह अनवर उसको अपने काफ़ी नज़दीक समझता है।

दिनेश की पत्नी रेखा को बीवी के लिए देहातन जैसे शब्द का प्रयोग पसंद नहीं आया, पर शालीनतावश वह मुस्कुरा दी। श्री और श्रीमती अनवर से उसकी पहली मुलाक़ात थी, और वह भी उसके अपने घर पर, वह उन्हीं के मुँह पर ही अपनी नापसंदगी ज़ाहिर करने की धृष्टता कैसे कर सकती थी।

साथ ही यह भी था कि अपने-अपने वतनों से कोसों दूर चारों यह महसूस कर चुके थे कि अमेरिका की रूखी, नीरस, व्यावसायिक, स्वकेंद्रित जीवनशैली में हर किसी को कुछ अच्छे-प्यारे मित्रों की ज़रूरत है। चूँकि आदर्श मित्र मिलना आसान नहीं था, इसलिए हर किसी को दूसरों के थोड़ा-बहुत अरुचिकर आचरण को बरदाश्त करना ही होगा।

अनवर ने दिनेश के बच्चों को प्यार किया। बड़ी बेटी गुनिया के गालों को थपथपाया और छोटी छुटकनियाँ को गोद में उठाते हुए बोला, 'एक छोटी लड़की हमारे घर में भी है, तुम्हारे जितनी। तुम कितने साल की हो?'

'छह।'

'वह भी छह की है। नाम है चंदा, चलोगी उससे मिलने?'

छुटकनियाँ सिर्फ़ शरमा दी और अनवर के चेहरे को देखती रही।

उस रोज़ अनवर ने दिनेश के घर खाना भी खाया। फिर चारों देर तक गप्पें लगाते रहे।

फिर एक दिन अनवर आया और बोला, 'तुम कार चलाना न जाने कब तक सीक्खोगे। चलो, आज मैं तुम्हें अपनी गाड़ी में ही अपने घर ले चलता हूँ।'

दिनेश और रेखा न-नुकर करते रहे, पर अनवर कहाँ टलनेवाला था। उसने चारों को अपनी कार में बिठाया और अपने घर घुमाने ले गया।

वहाँ अपनी बेटियों से मिलवाया– मानो, गुड्डो, पोपी और चंदा। पता नहीं उसकी बेटियाँ शैतान थीं या उस वक़्त नए मेहमानों से मिलने की ख़ुशी में कुछ शरारती हो गई थीं। चिड़ियों की तरह चहक रही थीं। कारण-अकारण इधर-उधर

भागती फिर रही थीं। पापा-पापा कहकर अनवर से चिपट रही थीं। भीतर के किसी कमरे से किसी की आवाज़ आ रही थी। उसने पूछा, 'अंदर कौन है?' अनवर ने बताया कि वालिद साहब क़ुरान पढ़ रहे हैं।

कैसी अजीब बात है, वह सोचने लगा, पाठ करने का अंदाज़ ऐसा है, जैसे कोई रामायण का पाठ कर रहा हो। बिल्कुल वैसी ही लय ... दिनेश को लगा कि वह पंजाब के किसी परिचित माहौल में है। बड़ी बेटी दिनेश के कान में बोली, 'पापा, मानो दीदी कुक्की बुआ जैसी नहीं लगतीं?'

'हाँ, लगती तो है।' दिनेश ने कहा। मानो और उम्र में दिनेश से काफ़ी छोटी उसकी मौसेरी बहन कुक्की में सचमुच बहुत समानता थी। बल्कि सच पूछो तो अनवर के घर में सब-कुछ मौसी के घर जैसा ही लग रहा था।

... उनकी भी चार बेटियाँ हैं, एक से एक सुंदर, शरारती और होशियार, इसी तरह हँसती रहती हैं। इसी तरह लड़ती हैं। और फिर इसी तरह जुड़ जाती हैं, इसी तरह बहुत बोलने वाली, अपनी उपस्थिति से हर माहौल में जान डाल देने वाली।

ख़ातिर करने में कोई कमी नहीं छोड़ रही थीं। एक कहती, 'मेहँदी हसन को सुनेंगे अंकल?'

दूसरी कहती, 'आप अज़ीज़ मियाँ को सुनेंगे अंकल? क्या क़व्वाली गाते हैं? तीसरी कहती, 'मुझे नूरजहाँ बहुत पसंद है। मैं आपको नूरजहाँ का वह गाना सुनवाऊँ, जो मेरा फ़ेवरेट है?' फिर कैसेट में रिकार्ड लगाकर सुनाने के लिए झगड़ने लगी। दिनेश की बड़ी बेटी भी उनके आगे-पीछे दौड़ने लगी, जैसे उनको बहुत समय से जानती हो। वह उन जैसी ही लगने लगी।

बेगम अनवर रसोई में खड़ी चपातियाँ बना रही थीं। बोलीं, 'अरे अंकल को चाट तो खिलाओ पहले।' बातों में जो शब्द बहुत आम था, वह था पाकिस्तान। हमारा पाकिस्तान, पाकिस्तान के शहर, पाकिस्तान की सड़कें, शहर, गलियाँ, मौहल्ले, मेले, गाने, लोकगीत, नृत्य, संस्कृति, पाकिस्तान की राजनीति भी। भुट्टो ठीक हैं कि ग़लत? उन पर चलाए जा रहे मुक़दमे झूठे हैं या सच्चे? पता चला कि सदर अनवर के बच्चे एक तरफ़ हैं, यानी भुट्टो की तरफ़ और सदर अनवर भुट्टो के ख़िलाफ़।

बहस जब तेज़ हो गई तो अनवर के अब्बा जी, जो अब तक बैठक में आ चुके थे और सबसे परिचय करा दिए जाने के बाद एक तरफ़ कुर्सी पर चुपचाप बैठे थे, सहसा बोले, 'पॉलिटिक्स ख़त्म करें अब। सिरदर्द हो जाता है।'

रेखा ने उनका साथ दिया, 'हिंदोस्तान में हमारे घर का भी यह ही हाल था अब्बू जी। आधे इंदिरा गांधी की तरफ़ होते, आधे इंदिरा गांधी के ख़िलाफ़। भला हमें पॉलिटिक्स से क्या लेना-देना है। पॉलिटीशियन एक-दूसरे से सिर टकराना चाहते हैं तो शौक़ से टकराएँ, लेकिन भले आदमियो, तुम अपनी मन की शांति क्यों ख़राब करते हो?'

शायद दोनों को ही अंदेशा था कि राजनीति की बातचीत हिंदोस्तान-पाकिस्तान के बीच की राजनीति में बदल सकती है, और अच्छा-ख़ासा बना-बनाया मधुर माहौल तल्ख़ हो सकता है। बात बदलने के लिए श्रीमती अनवर बोली, 'दनेश भाई को फ़ैमिली की एलबम तो दिखाएँ बई।'

रेखा ने टोका, 'इनका नाम दनेश नहीं, दिनेश है।'

श्रीमती अनवर बोली, 'दनेश भी होता है न?'

रेखा ने कहा, 'आप गणेश से कंफ़्यूज़ कर रही हैं शायद?'

यह सुनकर सब हँसने लगे। लेकिन इससे भी मज़ेदार बात यह कि वह बाद में भी दिनेश को दनेश ही पुकारती रहीं।

मानो भागकर परिवार की एलबम उठा लाई। दिनेश, रेखा और उनकी बेटियाँ एलबम देखने लगीं। यह कौन है? मेरे चाचू हैं। यह उनकी शादी की तस्वीर है। रात को देर तक ढोलक एवं गाने गाते रहे। यह कौन है? दादी अम्माँ हैं ... यह किसकी तस्वीर है? ... नहीं पहचाना ...?

ग़ौर से देखिए, अबू हैं। कौन अबू? अनवर?

तभी दिनेश की छोटी बेटी ने कहा, 'बिलकुल पापा लगते हैं।'

श्रीमती अनवर ने कहा, जब पोपी ने पहली बार दनेश भाई को देखा था तो वह भी यह ही बोली थी कि अंकल बिलकुल पापा लगते हैं।

उसके बाद खाना परोसा गया। सबने साथ बैठकर खाया। खाने में कढ़ी, मटर, पनीर और रायता थे।

दिनेश ने खाने की तारीफ़ करते हुए कहा, 'बहुत मज़े का बना है। अपने मुल्क से दूर तो रहा जा सकता है, लेकिन अपने मुल्क के खाने से दूर बहुत दिन नहीं जी सकता।'

अनवर की बेटी पोपी बोली, 'पाकिस्तानी खाने जैसा खाना तो दुनिया में कोई है ही नहीं।'

खाने के बाद जब सारी प्लेटें उठा ली गईं, सभी लोग हाथ धोने के लिए बिखर गए और श्रीमती अनवर छोटी-छोटी कटोरियों में खीर परोसने लगीं, तब दिनेश की छोटी बेटी ने उससे पूछा, 'यह अंकल कौन हैं?'

दिनेश ने बताया, 'यह मेरे दोस्त हैं। जहाँ मैं काम करता हूँ, वहाँ यह मेरे साथ काम करते हैं।'

'हिंदोस्तान में कहाँ रहते हैं?'

दिनेश ने बताया, 'यह हिंदोस्तान में नहीं, पाकिस्तान में रहते हैं। जैसे हिंदोस्तान होता है, जर्मनी होता है, इंग्लैंड होता है, वैसे ही पाकिस्तान भी होता है।'

लड़की कुछ देर चुप रही। बात जैसे उसकी समझ में नहीं आई, क्योंकि अमेरिका आते हुए जब वह रास्ते में जर्मनी में, इंग्लैंड में रुकी थी, तब उसने पाया था कि वहाँ लोग अलग तरह की बोली बोलते थे, अलग दिखते भी थे। इसलिए वह कुछ सोचते हुए बोली, 'तो फिर यह अंकल हमारी बोली कैसे बोल लेते हैं?'

दिनेश ने अपनी बेटी को आगे समझाने की कोशिश की, लेकिन उसे लग रहा था कि उसके पास इस बात का कोई ऐसा तर्कसंगत उत्तर नहीं है, जिसे उसका अपना मन स्वीकारता हो।

उसे लगा कि वह बेटी को नहीं, अपने को तर्क दे रहा है, और बहुत कोशिश के बावजूद वह सीमा-रेखा नहीं खींच पा रहा है, जो नक़्शे में दिखाई देती है। उसे समझ नहीं आ रहा था कि बच्ची की सहज बुद्धि में वह यह लकीर किस तरह डाले?

❐ 7881 Winter Cress Lane,
Spring field
VA22152-USA

हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश

(सचित्र)

संपादक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल

डॉ॰ मीना अग्रवाल

'हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश' के दो भागों का भरपूर स्वागत हुआ था। अब इसका तीसरा भाग प्रकाशित करने की योजना बनाई गई है। इस खंड में प्रत्येक साहित्यकार का चित्र भी प्रकाशित किया जाएगा।

आपसे आग्रह है कि कृपया अपना परिचय निम्न क्रम से भिजवाएँ–

1. नाम
2. जन्मतिथि
3. जन्मस्थान
4. शिक्षा
5. कार्यक्षेत्र
6. प्रकाशित कृतियाँ
7. पुरस्कार-सम्मान
8. पता
9. दूरभाष नं॰ (मोबाइल तथा ई मेल आदि)

परिचय के साथ अपना छायाचित्र भी प्रेषित करें। कृपया अपने छायाचित्र के पीछे अपना नाम तथा शहर का नाम अवश्य लिखें।

निश्चय ही 'हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश' साहित्यकारों के परस्पर परिचय में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।

अपना परिचय व चित्र इस पते पर भेजें–

हिंदी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)

दूरभाष : 01342-263232, 09368141411

अवसान

डॉ॰ सुषम बेदी

जन्म 1 जुलाई 1945, फ़िरोज़पुर (पंजाब) में। शिक्षा–एम॰ए॰, एम॰लिट्॰, पीएच॰डी॰। भाषाज्ञान–हिंदी, अँग्रेज़ी, फ्रेंच, पंजाबी, उर्दू, गुजराती। कार्यक्षेत्र–भू॰पू॰ प्राध्यापक। संप्रति कोलंबिया यूनिवर्सिटी में अध्यापन और शोध। कृतियाँ–उपन्यास–हवन ('88); कहानी–जमी बर्फ़ का कवच ('89); आलोचना–हिंदीनाट्य : प्रयोग के संदर्भ में ('84)।

जिस तरह से दिवाकर जीता जा रहा था उसे बिल्कुल अंदाज़ नहीं था कि कल को वह इस दुनिया में नहीं होगा।

यूँ तो अपने जाने की ख़बर किसी को नहीं होती, पर उसे ख़ास तौर से नहीं थी। इसकी जायज़ वजह थी उसके पास। पहली बात तो संसार के जिस सर्वोन्नत देश में वह रह रहा था, वहाँ छप्पन-सत्तावन साल की उम्र जीवन का मध्य माना जाता है, अंत का सूचक नहीं। फिर सामान्य तौर पर उसकी सेहत भी ठीक-ठाक रहती थी। दूसरों की बीमारियाँ ठीक करते-करते अपनी नश्वरता की चिंता करने की कभी फ़ुरसत ही नहीं मिली थी उसको।

यही बात मानकर उसने पचासवें में क़दम रखते ही तीसरी शादी की थी। यूँ शादी, तलाक़ ये आम बातें हैं इस देश में, पर वह यहाँ के अनलिखे नियमों के अनुसार हर सात साल के बाद तलाक़ करता था और तलाक़ के पाँच साल के भीतर ही अगली शादी। इस तरह उसके पाँच बच्चे भी पैदा हो चुके थे, जिनमें से चार अपनी-अपनी दुनिया में थे। छह साल का छोटा लड़का उसकी तीसरी पत्नी हेलन से था।

शहर के प्रमुख चर्च में हो रही इस अंत्येष्टि-क्रिया में शहर-भर के तमाम लोग जमा थे। कम से कम चार-पाँच सौ लोग तो होंगे ही। फूलों के ढेर सारे गुलदस्ते हॉल को महकाए थे। जीवन की ताज़गी और महक से मौत का अभिषेक किया जा रहा था। उन फूलों की जीवंतता को देखते-देखते सहसा मौत से ध्यान हट जाता था, पर फिर महज़ उन फूलों की उपस्थिति-मात्र ही उसका बरबस ध्यान दिला डालती थी। एक बड़े लकड़ी के बक्से में रखा फूलों से ही सजा-ढका दिवाकर का जीवनरिक्त शरीर मृत्यु के घट जाने को भुलवा कैसे सकता था।

पादरी बाईबल के सफ़ों से डेविड का साम पढ़ रहा था– 'प्रभु मेरा चरवाहा है तो मुझे क्या कमी है, वह मुझे हरियाले मैदानों में लेटाता है, शांत जल की ओर ले जाता है ... वही मेरे आत्म की रक्षा करता है और मुझे सही रास्ता दिखाता है।'

पादरी की आवाज़ में शांति है, स्थिर जल की ही तरह।

आवाज़ में दिलासा है–क़यामत का दिन, स्वर्ग की कामना! मृत के लिए इतरलोक के श्रेयस्कर की कामना। जीवितों के लिए एक लाचार तसल्ली।

लोग मौत की अवश्यंभाविता से डरे, ख़ामोश, अपनी-अपनी कुर्सियों पर अवस्थित।

शंकर को अजीब लग रहा था कि केवल वही एक हिंदुस्तानी था। बाक़ी सब दिवाकर के डाक्टरी पेशे से जुड़े लोग थे ... अस्पताल के साथी कर्मचारी डॉक्टर, नर्सें, मरीज़। इसमें काले, हिस्पैनिक और गोरे सभी क़िस्म के लोग मौजूद थे। पिछले तीस बरसों से तो वह यहाँ काम कर रहा था। इसी शहर के सबसे बड़े अस्पताल का प्रमुख डॉक्टर था। कितने ही मरीज़ों ने उससे जीवन पाया था, जो हमेशा के लिए उसके शुक्रगुज़ार थे।

उसकी तीनों पत्नियों के परिवार भी मौजूद थे।

दरअसल, पहले की दोनों पत्नियों के परिवारों और उनसे जन्मे अपने बच्चों के साथ अब भी उसका रिश्ता बना हुआ था। अभी भी वह उन बच्चों के कॉलेजों की फ़ीस दे रहा था। उनके जन्मदिनों पर उपहार भेजता था और उन्हें खाने पर बाहर रेस्तराँ ले जाता था। पर बच्चे फिर भी उसके न थे। वह उनके जीवन में एक बाहरी तत्त्व था, जो किसी दयानतदार रिश्तेदार की तरह अपनी भलमनसाहत की वजह से मदद किए जा रहा था। इसके एवज़ में उसे उन बच्चों से प्यार नहीं मिलता था, हाँ, वक़्त पर पैसा न पहुँचने की शिकायत ज़रूर मिल जाती थी। पर बेशक वे उससे उपकृत ज़रूर महसूस करते होंगे, तभी उसके जन्मदिन या क्रिसमस पर वे उसे शुभकामनाओं का कार्ड ज़रूर भेज देते थे। आज भी वे सभी बच्चे अपनी माँओं के परिवारों के साथ अंत्येष्टि में आए हुए थे।

पर उसके अपने परिवार का कोई भी उसके मृत्यु-संस्कार पर मौजूद नहीं था। रिश्तेदार भारत में ही थे, यूँ उनमें अब उसकी माँ और बहन ही बची थीं। यहीं पर कुछ मित्र थे, जिनसे मिलना-जुलना चलता रहता था।

वह ज़्यादा हिंदुस्तानियों से नहीं मिलता था। पत्नी अमरीकी थी तो दोस्तों का समूह भी वैसा ही था। शंकर ही उसका क़रीबी हिंदुस्तानी मूल का दोस्त था। दोनों मौलाना आज़ाद मेडिकल स्कूल के दिनों

से ही एक-दूसरे को जानते थे। उनकी आज तक दोस्ती बने रहने की शायद यह वजह भी थी कि शंकर की अमरीकी पत्नी के साथ उसकी पत्नी की निकटता थी। घरों में आना-जाना भी था और बच्चों का भी आपस में मिलना-मिलाना था।

अस्पताल से ही लाश सीधे फ़्यूनरल गृह में लाई गई थी और आज गिरिजाघर में सर्विस थी। वह नास्तिक था, इसलिए उसकी ईसाई पत्नी को ऐसा करने में कुछ ग़लत नहीं लगा। दोनों की शादी भी कोर्ट में ही हुई थी। यूँ भी वह कहाँ किसी मंदिर के पुजारी को खोजकर क्रिया-कर्म करवाती। शंकर ने कहा तो था कि वह पंडित का इंतज़ाम कर देगा। अब तो यहाँ काफ़ी लोग बस गए हैं, अच्छा पंडित भी ढूँढा जा सकता है।

पर हेलन एकदम नर्वस होकर बोली थी, 'प्लीज़ शंकर। उस बखेड़े में मत डालो मुझे। जो ज़िंदा होते हुए कभी हिंदू नहीं बना, अब उस पर यह सब क्यों लादना ज़रूरी है?'

'लेकिन ... ' और शंकर कुछ कह नहीं पाया था। विवाद का मौक़ा नहीं था। वह दोस्त की पत्नी के लिए चीज़ों को आसान बनाना चाहता था। पहले ही शोक-सताई हुई महिला को और कष्ट में नहीं डालना चाहता था। मुश्किल से सात साल तो हुए थे उसकी शादी को। दोनों का प्रेम-विवाह था। हेलन तो दिवाकर से क़रीब बीस साल छोटी रही होगी। क्या पता था कि इतनी कम देर जीना था उसे! अचानक उसकी ज़िंदगी में तो तूफ़ान आ गया था।

पर शंकर को मन में लगा था कि ब्राह्मण परिवार में पैदा होनेवाला उसका दोस्त दिवाकर क्या इस इंतज़ाम से संतुष्ट होगा। शंकर ख़ुद भी नास्तिक ही था। पर फिर भी यह मानता था, जो हिंदू पैदा हुआ है, वह हिंदू ही रहता है तो दाह-संस्कार किसी भी दूसरे तरीक़े से क्यों!

लेकिन उसकी पत्नी ने भी हेलन की हाँ में हाँ मिलाते कह डाला था कि यह तो ख़ाली सुविधा की बात है। चर्च का सारा इंतजाम साफ़-सुथरा है। वहाँ तो आए दिन फ़्यूनरल सर्विस होती ही है। आनेवालों को भी सुविधा रहेगी, पहचानी जगह है और फिर मंदिर कौन से इस तरह के कामों में अनुभवी हैं ... फ़ालतू में ही घचपच होगी। हवन वग़ैरह की किसी को समझ भी नहीं। फिर उसके मित्र भी ज़्यादातर तो अमरीकी हैं। किसको समझ में आएँगे संस्कृत के श्लोक!

मन-ही-मन शंकर को दिवाकर पर ग़ुस्सा भी आ रहा था। यूँ ही अचानक बिना बतलाए चल दिया। यह सब तो उसके साथ डिस्कस करके जाना था। अब शंकर न तो उसकी पत्नी पर किसी तरह का ज़ोर डालना चाहता था, न ही दोस्त से दग़ाबाज़ी।

यूँ नास्तिक होते हुए भी दोनों ने गीता, महाभारत, रामायण सब पढ़ रखे थे। गीता के कई श्लोक दोनों को ज़बानी रटे थे। बल्कि अपनी ज़िंदगी में संतुलन बनाए रखने के लिए कभी-कभी वे एक-दूसरे के व्यवहार पर श्लोकों के ज़रिए टिप्पणी करते थे, जैसे कि शंकर उसे कहता था– 'भई ये सारे बच्चों की कॉलेज और स्कूल की पढ़ाई का इतना भारी ख़र्चा तुम्हारा सच्चा निष्काम कर्म ही मानना चाहिए, वर्ना बीवी छोड़ने पर बच्चों को इतना सिर चढ़ाने की क्या ज़रूरत है? तुम तो अभी भी पूरी निष्ठा से लगे हो।'

दिवाकर हँसा था–'सब के अपने-अपने कर्मों का फल है। वे अपने हक़ का ले रहे हैं और मैं अपना धर्म निभा रहा हूँ। फिर जब सात समंदर पार आकर मेरा धर्म तो भ्रष्ट हो ही गया है, उसकी एवज़ में इतनी दौलत आ रही है तो वे भी क्यों न इसका सुख भोगें। शायद यही कुछ खटकर मैं अपनी योनि सुधार लूँ।'

एक बार किसी बात पर बड़ा ग़ुस्सा था शंकर, तो दिवाकर गीता के दूसरे अध्याय का बासठवाँ श्लोक गाने लगा था– 'क्रोध से सम्मोह होता है और सम्मोह से स्मृतिनाश, स्मृति न रहने से विचार-शक्ति का नाश होता है और बुद्धिनाश से सर्वनाश।' शंकर का ग़ुस्सा दूर करने के लिए ही इस बाण का उपयोग किया गया था और उसका असर हुआ भी।

पर यह सब बौद्धिक अभ्यास ही था। किसी आस्था का सुबूत नहीं। बस अजीब बात यह थी कि ख़ुद को नास्तिक कहकर भी उसकी शब्दावली, संदर्भ, सब हिंदूशास्त्रों से ही जुड़े थे और यह सब अनायास होता था।

मूल बात यह थी कि दिवाकर के समूचे व्यक्तित्व में एक उदारता थी, हर तरह के देने में खुलापन था ... प्यार, पैसा, विचार, सलाह! यह और बात है कि अमरीकी पत्नियाँ होने के कारण वह अपने हिंदुस्तान में बसे घरवालों को अपने यहाँ ज़्यादा बुला न पाता था। पर वक़्त-बेवक़्त पैसों की खुली मदद ज़रूर कर देता था। ख़ुद जाकर उन्हें मिल भी आता था।

शंकर से हेलन ने ख़ास इल्तिजा की थी– 'क्या तुम उसकी माँ-बहन को यहाँ आने से रोक सकते हो? मुझ पर सबसे बड़ा उपकार यही होगा।'

शंकर को एकदम से धक्का लगा था। शायद यह समझकर ही हेलन ने कहा था–'देखो शंकर, एक तो यहाँ का ही सब-कुछ मुझे अपने से सँभालना होता है। ऊपर से माँ-बहन के आने से मुझे उनकी भी सेवा-परवरिश में लगना होगा। मैं इस वक़्त तन और मन, हर तरह से बहुत कमज़ोर महसूस कर रही हूँ। फिर अब-जब कि दिवाकर रहा ही नहीं तो मुझसे उन सबकी देखभाल का बोझ नहीं ढोया जाएगा। यूँ भी कौनसा ज़्यादा मिलना-जुलना था। पाँच-पाँच साल बाद तो मुश्किल से वह घर जाता था और व्यक्तिगत रूप से मेरा तो उनसे कुछ लेना-देना

था नहीं। मैं तो एक बार से ज़्यादा उनसे कभी मिली ही नहीं।'

शंकर ने कहा–'सो तो तुम सही कह रही हो हेलन, पर वे इसरार तो करेंगी ही। आख़िर बेटे या भाई का चला जाना ... मौत पर वे आना तो चाहेंगे ही। सगे तो ऐसे मौक़ों पर आते ही हैं।'

हेलन बोली–'मेरे पास पैसा नहीं है उनकी टिकटें भेजने का।'

'वह मैं दे दूँगा। वे शायद माँगेगी भी नहीं। पैसा उनके पास भी काफ़ी है। फिर कोई पैसे की परवाह नहीं करता ऐसे मौक़े पर।'

'तभी तो तुमसे कह रही हूँ। वे तो आने को तैयार बैठी हैं। तुम उसके क़रीबी दोस्त रहे हो। तुम्हारी बात वे समझ लेंगी। मैंने बार-बार उनसे न आने को कहा है, पर वे सोचती हैं कि मैं औपचारिक हो रही हूँ। जैसे भी समझाऊँ उनको समझ भी नहीं आता।'

'हेलन, वे लोग तुमसे चाहे न भी मिलना चाहें, पर उन्हें पोते-पोतियों से तो मिलना होगा।'

'सो मैं उसे छुट्टियों में भारत भिजवा दूँगी। उसकी पहली बीवियाँ जो करना चाहें करें। मैं अपने बेटे का तो वचन देती हूँ, उनसे मिलने ज़रूर भेजूँगी। पर तुम किसी तरह अभी उनका आना रोक लो।'

और शंकर ने फ़ोन पर कहानियाँ गढ़कर रोक लिया था।

'हेलन को रोज़ काम पर जाना होगा। उसके पास आपके साथ बिताने का वक़्त नहीं होगा। उसकी तबियत भी ठीक नहीं है। बेचारी बहुत अकेली पड़ गई है।'

'बच्चों के भी स्कूल खुले हैं। उनकी ज़िंदगी में ख़लल डालना सही नहीं होगा।'

'आप लोग यहाँ आकर करेंगे क्या। सब तो कामों में बिज़ी होंगे। फिर हवाई अड्डे से लाना-लेजाना, खाना-पिलाना ये सब बंदोबस्त भी तो हेलन को करने होंगे। ऐसी हालत में कैसे कर पाएगी, बेचारी! पहले ही उसका अपना हाल बुरा है। आख़िर उसके लिए तो भरी जवानी में ही पति चल बसा। पहले ख़ुद को तो सँभाले ... औरों की ज़िम्मेदारी कैसे ले पाएगी।'

'दिवाकर तो चला गया, जिसके साथ नाता था। उठना-बैठना था। अब यहाँ किसके लिए आएँगी।'

'बच्चे आपसे मिलने आएँगे छुट्टियों में। तब साथ वक़्त बिताने का मौक़ा मिलेगा। कुछ धैर्य से काम लें। जो गया वह तो लौटेगा नहीं।'

मन में बहुत कष्ट हुआ था शंकर के। पर वह हेलन का नज़रिया भी समझता था। बेचारी सच में कैसे सँभालेगी उन पक्की हिंदुस्तानी सास-ननद को! छुआछूत, शाकाहारी, पता नहीं कितने तो झमेले होंगे। उसकी अपनी पत्नी जैकी भी तो कितनी नर्वस होती है उसके घरवालों से मिलकर। लाख ख़्याल रखने पर भी उससे कोई न कोई ग़लती हो ही जाती है। कभी पल्ला ठीक नहीं लिया तो कभी पाँय हाथ नहीं लगाया। वह तो ख़ुद इन चक्करों से परेशान हो अकेले ही जाकर माँ से मिल आता है। शुरू में जैकी भी गई थी उसके साथ। अब वह भी अपने कामों में उलझी रहती है और वे दोनों अपनी-अपनी छुट्टियाँ अपनी-अपनी मर्ज़ी से बिताते थे। साल दो साल में एक बार बस बच्चों के साथ पारिवारिक छुट्टी, वहीं अमरीका या यूरोप वग़ैरह में मनाई जाती थी। पिछली बार वह बेटी को भारत साथ ले गया था दादी से मिलवाने। पर बच्चे हर बार साथ चलना भी नहीं चाहते। उनके हमउम्र साथी न हों तो उन्हें कहीं भी जाना भला नहीं लगता।

शंकर ने दुबारा ग़ौर किया। उस दोस्त के अंतिम संस्कार पर एक भी हिंदुस्तानी नहीं था और शंकर को बहुत अजीब-सा लग रहा था। उसके कान जैसे किन्हीं मंत्रोच्चार के लिए खुले बैठे थे, आँखें जैसे आग की लपटों के लिए आकुल। नासिकाओं में घी और सामग्री की चिकनी गंध कुलबुला रही थी।

पर गिरिजाघर के हाल में सिर्फ़ पादरी की आवाज़ गूँज रही थी।

शंकर इस सारे माहौल में बड़ा कुंठित-सा हो रहा था। उसके मन की बात कोई नहीं कह रहा था। वह इस सारे आयोजन में एक द्रष्टा की तरह था। किसी से कुछ बाँट ही नहीं पा रहा था। कितना कुछ तो था उन दोनों के बीच जो अभी भी साँस ले रहा था ... शंकर की आँखों के आगे वह नज़ारा घूम गया, जब वह पहली बार इस शहर की ज़मीन पर उतरा था, हवाई जहाज़ से। दिवाकर ही उसे हवाई अड्डे पर लेने पहुँचा हुआ था। शुरू के कुछ दिन उसी के घर पर टिका था। वहीं उसकी अमरीकी गर्लफ्रेंड से भी मुलाक़ात हुई थी। उन दिनों शहर में कोई भी हिंदुस्तानी रेस्तराँ नहीं होता था। भारतीय खाने की हुड़क उठती तो ख़ुद ही जुगाड़ करना पड़ता। बस दोनों छड़े-छड़ाँग तरह-तरह के खानों के प्रयोग में जुट जाते। हिंदुस्तानी खाना बनाने और अस्पताल के कर्मचारियों के साथ व्यवहार के तौर-तरीक़ों से लेकर लड़कियों से डेटिंग तक हर चीज़ में वही शंकर का गुरु था। यूँ वह था तो शंकर से एक ही साल बड़ा, पर हर बात में अगुआ। उन दिनों इस शहर में गिने-चुने ही हिंदुस्तानी रहते थे, इसलिए एक-दूसरे का साहचर्य और भी ज़्यादा क़ीमती था। हर बात में एक-दूसरे से सलाह, एक-दूसरे के साथ चाह! कॉलेज के दिनों की दोस्ती और भी गहरी जड़ें जमाती गई थी।

शंकर की स्मृति उसे और भी दूर, और भी पीछे ले जाती जा रही थी। दिल्ली के तालकटोरा गार्डन में यूथ फ़ेस्टिवल चल रहा था। उन्नीस बरस के शंकर ने ज़िंदगी में पहली बार एक लड़की को चूमा था और आसमान में उड़ता हुआ धरती पर उतर

ही नहीं पा रहा था। तब दिवाकर ने कत्थे-चूने वाला पान उसके मुँह में डालकर कहा था– 'ले खा ले। नशा कुछ नीचे उतरेगा।'

दिवाकर ने ही उसे कविता और संगीत की ओर खींचा था। डाक्टरी की दुनिया में उलझे शंकर को कभी भी इनकी ख़बर न रहती। दिवाकर ने उसे ग़ालिब पढ़वाया था, टैगोर की कविता की ख़ूबसूरती पहचाननी सिखाई थी और रवींद्र संगीत की कोई भी काम्पोज़िशन वह दिवाकर को याद किए बिना सुन नहीं सकता था। उनके इतवारों की दुपहरियाँ और शामें ज़्यादातर हिंदुस्तानी संगीत सुनने में ही निकलती थीं।

अब शंकर के भीतर ही सब-कुछ कसमसा रहा था।

पादरी ओल्ड टेस्टामेंट की पंक्तियाँ पढ़ रहा था– 'राख से राख, धूल से धूल, जिस मिट्टी से निकले हैं, उसी में मिल जाना है।'

सहसा कोई साँप-सा सरक गया शंकर की रीढ़ पर से। जैसे कोई मनोमन मिट्टी के नीचे उसे दफ़न किए दे रहा हो! अजीब घुटन-सी हुई उसे।

हाल में एकदम ख़ामोशी थी। सिर्फ़ पादरी के शब्द कानों के परदों से टकरा रहे थे। शंकर जैसे मनन कर रहा था अपने गाढ़े दोस्त की रुख़सती पर। भीतर कुछ चिरता जा रहा था। सब ख़तम, सब-कुछ मिट्टी में, बस यही था होना। जीवन, हस्ती, अस्तित्व, दुनिया-भर का फैलाव, साज़ोसामान, अपने इतने क़रीबी दोस्त का इस तरह चला जाना जैसे ज़िंदगी का कोई अर्थ ही नहीं रहा था। सब-कुछ झूठ, भुलावा, क्या सच में कोई सार नहीं। क्या सच में दिवाकर का होना, लोगों के लिए इतना कुछ करना। उसकी दोस्ती, उसका प्यार, यूँ ही, अर्थहीन, मिट्टी, ये सब लोग ... वह ख़ुद ...।

कुछ गूँज रहा था शंकर के भीतर। बजने लगा था उसकी शिराओं में। कितना कुछ संचित, अरसे से अर्जित, गुना-मथा हुआ, कहीं दबा-छुपा हुआ।

पादरी आमेन करके डायस से नीचे उतरने ही वाला था कि शंकर सहसा खड़ा हो गया और तेज़ लेकिन सधे क़दमों से डायस की तरफ़ चला। लोग उसे देख रहे थे, हल्की-सी हलचल मची। लोग हैरान, पर चुप थे।

बहुत संयत आवाज़ में शंकर ने कहा– 'अपने दोस्त के लिए कुछ गीता के श्लोक, और उसने संस्कृत और अँग्रेज़ी अनुवाद करते हुए एक के बाद एक श्लोक उच्चरित करने शुरू कर दिए। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक थे ये ...' ये न कभी हत होता है न हत्यारा, न कभी जनमता है, न विनशता, जन्म-मरण से परे देह नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता। ... जिस तरह घिसे हुए वस्त्रों का त्याग कर नए नए धारण करता है उसी तरह घिसी देह का त्याग कर नई अपनाता है देही।'

सब उसी ख़ामोशी से सुन रहे थे, जिस ख़ामोशी से पादरी को सुना था। शंकर का संस्कृत का उच्चारण भी बहुत कर्णमधु था। फिर भी लोग उस तरह सहज नहीं थे जैसे अब तक थे। शायद उन स्वरों की ध्वनियाँ उन्हें अजनबी लग रही होंगी। फिर भी उन ध्वनियों में सत्त्व था, आग्रह था, एक आंतरिक संगीत था, जिसे यूँ ही अनसुना नहीं किया जा सकता था। सबने सुना और चुपचाप अपनी जगह टिके हुए सुनते रहे।

शंकर की निगाह अपनी पत्नी से मिली। भौंचक-सी देख रही थी वह उसे। समझ नहीं पा रही थी शायद कि दाद दे या हैरान हो। उसकी हिम्मत सराहे या कि इस अटपटे व्यवहार पर डपट लगाए। शंकर को लगा कि वहाँ जैकी नहीं ... हेलन ही खड़ी हो।

एक डरावनी-सी काली छाया उसके शरीर को दो टुकड़ों में काटती चली गई। सामने कुछ नहीं दीखता था अब। बस अँधेरे का गाढ़ा काला घोल!

पता नहीं कितनी-कितनी परछाइयों से लड़ रहा था उसका अवचेतन!

शंकर को लगा उसकी आवाज़ ख़ामोश हो रही है। उसके कान में फिर से पादरी की आवाज़ बजने लगी। मिट्टी से बनकर मिट्टी में ही मिल जाना है। उसे लगा जैसे वह अपना ही अवसान देख रहा है। इसी तरह, ठीक इसी तरह उसकी पत्नी, गिरिजाघर की दीवारें, लंबी रंगीन खिड़कियाँ, बाइबल की पंक्तियाँ, अनजाने चेहरों का सैलाब, डरे हुए पस्त चेहरे, धूल और मिट्टी के अंतहीन अंबार!

और उसने फिर से ज़ोर लगाया। पल-भर को वह कुछ और देख-सुन नहीं पा रहा था। फिर सहसा जैसे पानी को काटता हुआ कोई जलपोत, उसके ओठों से फिर से फूट निकला ... काट न सकते शस्त्र आत्मा को, आग न कभी इसे जलाती, विकृति रहित है अविचल आत्मा, जन्म नित्य है तो मरण नित्य।

अचानक उसे लगा, ताबूत में ख़ामोश लेटे दिवाकर का चेहरा उसकी ओर देखकर मुस्कुराया है। शंकर के रोंगटे खड़े हो गए। पल के भी छोटे से हिस्से में उसे महसूस हुआ कि दिवाकर कहीं नहीं गया, यहीं है, उसके आसपास। पर वह मुस्कान थी या खिल्ली, इसका फ़ैसला शंकर नहीं कर पाया।

हॉल में अब लौटने वालों के पैरों और धीमी-धीमी बातों का शोर शुरू हो गया था। शंकर की आवाज़ शोर में डूब चुकी थी, पर उसे लग रहा था कि अपनी आवाज़ वह अभी भी सुन पा रहा है।

❐ 607 Kent Hall, Columbia University
New York, NY 10027
E-mail : sb12@columbia.edu

वानप्रस्थ

अनिलप्रभा कुमार

अपनी जमी-जमाई गृहस्थी छोड़कर, इस वन में प्रस्थान तो दोनों ने इकट्ठे ही किया था। फिर यह विश्वासघात कैसा? उसे अधबीच में छोड़ यह कहाँ जा रहे हैं? इस वन में क्यों वह अकेली ही खड़ी हैं? लगा चेतना गहरे भँवर में उतर रही है।

'माता जी, बटन दबा दीजिए।'

वह जैसे होश में आईं। अपना काँपता हुआ हाथ नाती के हाथ के ऊपर रख दिया। सारा बदन कँपकँपाया, आँखें अपने-आप बंद हो गईं।

विदा! हरे कृष्ण, जय श्री कृष्ण।

वह अपने उमड़ते हुए आवेग को रोक नहीं पाईं। एक हल्की-सी चीख़ निकल ही गई। स्वाहा! सब जगह अँधेरा छा गया। बड़े दामाद ने पीछे से सहारा देकर थाम लिया।

किसी ने माथे पर हाथ रखा। देखा गोपी बेन पानी का गिलास उनकी ओर बढ़ा रही थीं। उन्होंने मुँह खोल दिया। चारों ओर आँखें घुमाईं।

'कहाँ गया मेरा बालसखा?' विह्वल होकर फिर से उनकी रुलाई छूट गई। चौदह की थीं वह, जब ब्याह हुआ और वह सोलह के। सोलहवें साल में जब गौना करा के आईं तो तभी से उनके लिए बस वह ही सब-कुछ थे, वही थे उनका संसार। लगता उनसे पहले उनका कुछ जीवन था ही नहीं। अब उनके बिना कैसे होगा?

आँखें बंद कर वह अदृश्य शक्ति से प्रार्थना करने की कोशिश करना चाहती थीं, पर डाक्टर साहब का चेहरा आँखों से हटता ही नहीं। फिर से नीम-बेहोशी छा गई।

शाम से ही मंदिर वाले लोग घर में आने शुरू हो गए। उन्होंने दुपट्टे से सिर ठीक से ढक लिया और सूनी-सूनी आँखों से सब देखती रहीं।

पराया देश, पराया घर, पराए लोग। सभी उनसे आधी उम्र के थे या उससे भी कम। कौन हैं ये सब? शायद श्यामा की जान-पहचान के हैं। मंदिर के भी कुछ लोग, कई तरह की वेश-भूषाओं में, कुछ सिर मुँडाए, भगुआ कपड़े पहने, गोरे-काले सभी रंगों के लोग, चंदन का तिलक लगाए, मग्न होकर कीर्तन कर रहे थे। फिर वे लोग खड़े होकर, तालियाँ बजा-बजाकर, कीर्तन करते हुए नाचने लगे। वह इन चेहरों को पहचानती हैं, मंदिर में अक्सर देखे हैं, पर जानती किसी को नहीं।

अगले दिन गुरु महाराज भी आए थे, उन्होंने बढ़कर गुरु जी के चरण-स्पर्श किए। झिझकीं, उनके बच्चों जितनी आयु के ही होंगे?

वही निर्देश दे रहे थे। पूरे दस दिन घर में प्रातः और संध्या गीता का पाठ होगा। तेरहवें दिन क्रिया होगी। उस दिन गुरु महाराज स्वयं आकर हवन करेंगे। तब तक क्रिमेशन हाउस से फूल भी आ जाएँगे, जिन्हें लौटते समय गुरु महाराज भारत साथ ही ले जाएँगे और फिर गंगार्पण कर देंगे। देवकी रोमांचित हो गईं। कहाँ उनके मन के कोने में बैठा छोटा-सा मलाल बेटा न होने का और यहाँ स्वयं गुरु महाराज ने आकर वह अधिकार अपने हाथ में ले लिया। एक संन्यासी गद्दी पर बैठकर स्वयं डाक्टर साहब के लिए अग्नि को आहुति दे रहा है, बेटा बनकर।

बस सब-कुछ हो गया। अस्सी से ऊपर की उमर, बीमारियों से छलनी शरीर और पति की मृत्यु से शिथिल हालत में भी उन्होंने अपनी ओर से सब-कुछ मर्यादा

जन्म दिल्ली में; दिल्ली विश्वविद्यालय से हिंदी ऑनर्स और एम॰ए॰ करने के बाद आगरा विश्वविद्यालय से 'हिंदी के सामाजिक नाटकों में युगबोध' विषय पर शोध करके पी-एच॰डी॰ की उपाधि पाई; विलियम पैट्रसन यूनिवर्सिटी, न्यूजर्सी में हिंदीभाषा और साहित्य का प्राध्यापन कर रही हैं। लगता है फिर से छूटे हुए सिरे हाथ में आ रहे हैं। दो तीन वर्षों से कहानियाँ और कविताएँ अपने-आप लिखी जा रही हैं; सन् 1967 से सन् 1972 तक दिल्ली दूरदर्शन पर हिंदी 'पत्रिका' और 'युवा पीढ़ी' कार्यक्रमों में व्यस्त रहीं। सन् 1967 में 'ज्ञानोदय' के 'नई क़लम' विशेषांक में 'ख़ाली दायरे' कहानी पर प्रथम पुरस्कार पाने पर लिखने के लिए प्रोत्साहन मिला। कुछ रचनाएँ 'आवेश', 'संचेतना', 'ज्ञानोदय' और 'धर्मयुग' में भी छपीं; सन् 1972 से अमरीका में आकर बस गईं। सन् 1982 तक न्यूयार्क में 'वायस ऑफ़ अमरीका' की संवाददाता के रूप में काम किया और फिर अगले सात वर्षों तक 'विज़न्यूज़' में तकनीकी संपादक के रूप में। इस दौर में कविताएँ लिखीं। फिर ज़िंदगी के इस तेज़ बहाव में लिखना हाथ से छूटता ही गया।

से कर दिया। सबके लिए जीवन सामान्य हो गया था, सिवाय उनके।

श्यामा सुबह ही काम पर चली गई। वह बीच वाले कमरे में सोफ़े पर आकर लेट गई। यह कमरा अनौपचारिक बैठक थी और उनका छोटा-सा पूजाघर भी। बाँईं ओर के खुले हिस्से से रसोईघर दिखता। सामने छोटा-सा फ़ायर या ड्योढ़ी कह लो। वहाँ से बाँएँ मुड़कर बैठक से रसोई और फिर रसोई से इस कमरे में आ सकते थे। फ़ायर से दाएँ मुड़ जाओ तो सोने के लिए तीन कमरे और बीच में एक बड़ा-सा बाथरूम। डाक्टर साहब यहाँ की सर्दी में बाहर निकलना नहीं चाहते थे। बस बाथरूम की दीवार से लेकर बैठक की दीवार तक सीधे चहल-क़दमी करते रहते। करने को और कुछ था भी नहीं। चारदीवारों में बंद छटपटाते।

'देवकी, यह अमरीका पिंजरा है, सोने का पिंजरा।'

'उड़ चलो। अभी भी अपना घर है दिल्ली में।'

'क्या जा सकते हैं?'

'नहीं।' वह सिर झुका लेतीं।

'फिर शिकायत क्यों? जो उसकी इच्छा।' वह अपने इष्ट-देव की मूर्ति की ओर इशारा कर देते।

वे दोनों ही नियति के इस खेल में गोटों की तरह कहाँ से कहाँ रख दिए गए थे। तीनों बेटियाँ अच्छे घरों में ब्याह दीं। दिल्ली

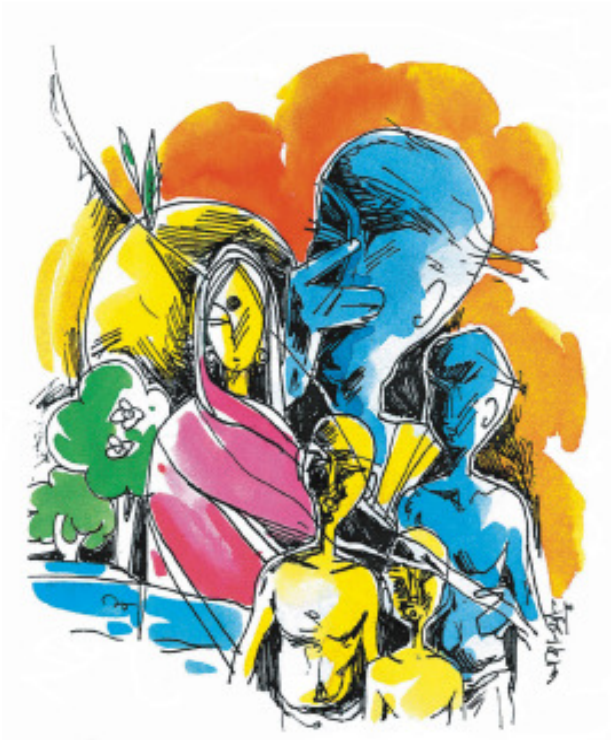

में इतना बड़ा घर था उनका। डाक्टर साहब ने तो अवकाश प्राप्त करके आराम की ज़िंदगी शुरू कर दी थी, पर देवकी को कोई अवकाश नहीं। वही संबंधी, बेटियाँ, उनकी ससुराल आना-जाना, लेना-देना, व्यावहारिकता पूरी गति से चलती।

डॉक्टर साहब कहते, 'देवकी यह दुनियादारी के झंझट अब कम कर दे। हो गई हमारी गृहस्थ-जीवन की ज़िम्मेदारी पूरी। अब तो हमारी वानप्रस्थ की आयु है।'

'आयु को क्या करूँ? आपके सगे-संबंधी, मित्रों, मेहमानों का ताँता कम ही नहीं होता। ऊपर से कोई न कोई साधु-संत को भी आमंत्रित कर लेते हो।'

'तो क्या हुआ? कोई किसी चीज़ की कमी है क्या? नौकरों से कहा करो।'

'फिर भी देखना तो मुझे ही पड़ता है न।'

वह चुप कर गए। सच था। वह तो बस चाहते थे कि घर में सबका सेवा-सत्कार पूरा हो। कैसे हो यह सब ज़िम्मेदारी उनकी पत्नी की ही थी।

भरी-पूरी गृहस्थी में एक दिन वानप्रस्थ का हुक्म आ ही गया। जैसे गाज गिरी हो उन पर। सबसे बड़ी बेटी का केनेडा से फ़ोन आया था। अगर श्यामा की ज़िंदगी चाहिए तो बस सब-कुछ छोड़कर उसके पास अमरीका पहुँच जाओ। मालूम था कि श्यामा का पति कुछ अरसे से खटपट कर रहा था। उम्मीद नहीं थी कि नौबत यहाँ तक आ पहुँचेगी। दो छोटे बच्चे थे उसके। सभी कितना समझाया करते थे उसे। जब अचानक तलाक़ के काग़ज़ लेकर, शैरिफ़ के दफ़्तर से आदमी दरवाज़े पर खड़ा हो गया तो श्यामा को सँभलने का मौक़ा ही न मिला। चोट और अपमान की आग में तमतमाते हुए उसने भी वैसे ही तलाक़नामे पर दस्तख़त करके काग़ज़ वापिस भेज दिए। मामूली-सी नौकरी, दो छोटे-छोटे बच्चे और परदेश में अकेले होने की भयावहता। न तन, न मन, दोनों ही यह धक्का बर्दाश्त नहीं कर पाए। बिस्तर से जा लगी। धीरे-धीरे घुल रही थी।

देवकी और डाक्टर साहब को कुछ होश नहीं। बैंक की पास-बुक कहाँ थी और शेयरों के काग़ज़ कहाँ? दिल्ली में ही ब्याही प्रिया मिलने आई तो देवकी ने घर की चाभियाँ उसी के हाथों में सौंप दीं। 'बस अब तू ही सब-कुछ देख लेना। हम पता नहीं कब लौटें।'

प्रिया बहुत रोई थी।

'बेटा, हम तो अपना कर्त्तव्य, धर्म पूरा करने जा रहे हैं।' डाक्टर साहब ने उसे सांत्वना देते हुए कहा। तन-मन से टूटी श्यामा को देवकी ने अपने सीने से चिपटा लिया। बेटी की पीड़ा को माँ अपने सीने में सोख लेती है। जब बेटी तड़पती है तो माँ पर क्या बीतती है, यह दर्द देवकी झेल रही थी। देश-निकाले

का दर्द तो उसके सामने कुछ भी नहीं।

'हम हैं न, तू किसी बात को दिल से मत लगाना।'

डाक्टर साहब ने फिर से छोटे-छोटे बच्चों को सँभाल लिया।

देवकी ने रसोई में जाकर पहली बार पास्ता बनाने की कोशिश की। यह गृहस्थी का दूसरा दौर था। दिन-भर दोनों पति-पत्नी सोने के पिंजरे में टहलते।

पहले प्रिया से कहकर कुछ रुपए यहाँ मँगवा लेते थे। कोई यहाँ से भारत जाता तो प्रिया उसे वहाँ ख़र्च करने के लिए रुपए दे देती। वह यहाँ आकर डाक्टर साहब को डॉलर्स दे देता। बीच में एक बार देवकी श्यामा को लेकर घर गई।

'मेरी एफ०डी'स कहाँ हैं?'

किसी को नहीं मालूम था।

किसी ने चोरी कर लीं? सब पैसे निकलवा लिए?

ऐसा कैसे हो सकता है? शेयर्स थे डाक्टर साहब के। दलाल का इस बीच देहांत हो गया था। काग़ज़ कहाँ हैं?

प्रिया रोने-धोने को हो गई।

'माँ, मुझे सच में कुछ नहीं मालूम। मैं ठहरी जन्म से लापरवाह। कहीं इधर-उधर चाबियाँ रख देती हूँ। क्या पता कौन चोरी करके ले गया।' वह अपराधिन महसूस कर रही थी।

देवकी जैसे सकते में वापिस लौटी।

'इतना पैसा हम छोड़कर आए थे, आख़िर कहाँ गया?'

डाक्टर साहब शांत, निर्विकार बैठे रहे।

'आप कुछ करते क्यों नहीं?'

'क्या चाहती हो?'

'हिंदुस्तान जाओ, मामले की छानबीन करवाओ।'

'जिसकी क़िस्मत में था ले गया होगा।'

'पता करवाओ।'

'क्या पता करवाऊँ अपने ही परिवार में क्या पहले पूछताछ न होगी?'

'सारा पैसा क्या ऐसे ही चला गया?' देवकी अपने को कैसे समझाए?

'अच्छा हुआ, माया गई। इसमें भी उसका कोई रहस्य होगा।'

वह ध्यान-मुद्रा में जा बैठे।

आजकल रात में कई-कई बार जागती हैं वह। बस रात ही कटने को नहीं आती। आँख खुली तो खिड़की से देखा अभी दिन नहीं हुआ। ग़ुसलख़ाने से नहाने की आवाज़ आ रही थी। जब शरीर नहीं चलता तो इंद्रियों की बैसाखियों पर ही निर्भर होना पड़ता है। आवाज़ों से ही उन्होंने जाना कि श्यामा नहाकर तैयार हो रही होगी। अब रसोई में गई है। चाय बनाते वक़्त साथ ले जाने के लिए भी कुछ बाँध रही होगी।

फिर उसकी परछाईं उनके दरवाज़े पर उभरी।

श्यामा धीरे से फुसफुसाई– 'हरे कृष्ण'

'हरे कृष्ण'। उन्होंने जवाब में कहा।

बाहर का दरवाज़ा बंद होने की आवाज़ आई।

वह यूँ ही चुप-चाप लेटी रहीं।

धीरे-धीरे हाथ-पाँव हिलाए। पलकें झपकीं, गहरी साँस ली। अपने ज़िंदा होने को महसूस किया। चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई। आज एक और दिन की मोहलत मिल गई।

देवकी ने आकर टेप-रिकार्डर पर भजन लगा लिए। चुपचाप बैठी सुनती रहीं। लगा डाक्टर साहब अभी यहीं तो थे 'शायद उठकर दूसरे कमरे में चले गए हों। बैठी रहीं, यूँ ही बैठी रहीं। मालूम था वह अब नहीं आएँगे। गहरी साँस लेकर भागवत खोलकर बैठ गईं। पढ़ने में मन लगाया। कुछ पंक्तियों को रेखांकित किया। फिर एक नोट-बुक में उतार लिया। घड़ी पर नज़र डाली, अभी तो सिर्फ़ दस ही बजे थे। धीरे से उठीं। रसोई तक आईं। एक प्याले में थोड़ा-सा दूध डाला। माइक्रोवेव में गरम कर लिया। मेज़ पर एक छोटी-सी ट्रे सिर्फ़ उन्हीं की दवाइयों की शीशियों से भरी थी। दो शीशियाँ उठा लीं। हथेली में अपने-आप गोलियाँ रखीं। सामने पड़ी ख़ाली कुर्सी को देखकर सिर नीचा कर लिया। डाक्टर साहब को घर के काम करने की कहाँ आदत थी? बार-बार आकर पूछते–'खाना बन गया? भगवान को भोग लगाना है।'

'आपको ख़ुद भोग लगाना है।' वह झल्लातीं।

'मुझसे यहाँ आकर इतना काम नहीं होता।'

'मैं भी तो तुम्हारी मदद करता हूँ।'

'क्या मदद करते हैं आप?' उन्होंने तेवर चढ़ाकर पूछा।

डाक्टर साहब सकपका गए। फिर सोचकर बोले–'तुम्हें वक़्त से दवाई देता हूँ।'

'बस आगे से मत दिया कीजिए। आप एक बार बता दीजिए, मैं ख़ुद ले लूँगी।'

वाक़ई उन्होंने ख़ुद दवाई लेनी शुरू कर दी।

'देवकी, ज़िद मत किया कर। भूल जाएगी, ग़लत ले लेगी।' वह उन्हें समझाने की कोशिश करते। वह नहीं मानीं।

इसके पूरे महीने-भर बाद वह आग्रह करने के लिए भी नहीं रहे।

देवकी का गला रुँध गया। पानी के साथ गोलियाँ गटककर धीरे-धीरे दूध के घूँट भरने लगीं।

निगाह दीवार पर लगी बच्चों की तस्वीर पर पड़ी। तब वे छोटे थे। वक़्त कितनी जल्दी बीत गया। नाती ने पढ़ाई पूरी करके दूसरे शहर में नौकरी कर ली। नातिन भी अब अलग रहने लगी थी। पढ़ती भी थी और साथ-साथ काम भी करती। घर का वातावरण उन्हें बहुत धार्मिक और दमघोंटू लगने लगा था। बच्चों के सामने अपने भविष्य के सपने थे, उनके अपने मित्र, उनका अपना आज़ाद जीवन। श्यामा ने एक ओर हटकर राह दे दी बच्चों को, किसी को रोका नहीं।

नाती को बहुत अच्छी नौकरी मिली थी, तो देवकी को भी अंदर-ही-अंदर तसल्ली हो गई। श्यामा को अब सहारा हो जाएगा। कितने बरसों से श्यामा एक ही पुरानी गाड़ी चलाती आ रही थी, जो आए-दिन बैठ जाती।

एक दिन मुँह से निकल ही गया– 'बेटा, अब तो तू माँ को एक नई गाड़ी ले ही दे। इसमें अगर टक्कर लग गई तो बचना मुश्किल हो जाएगा।'

वह चुप रहा।

फिर एक दिन गर्मी से बेहाल होकर श्यामा ने भी कह दिया– 'नानी की इतनी गरमी से तबियत बिगड़ जाती है। उन्होंने तुम्हारे लिए इतना कुछ किया है, एक एयर-कंडीशनर तो ला दो।'

वह ग़ुस्से से झल्लाया था।

'आप लोग सोचते हैं कि मेरे पास डॉलर छापने की मशीन पड़ी है। पहले भी तो आप लोग गरमी में रहते ही रहे हैं। अब क्या नई बात हो गई सिवाय इसके कि मैं कमाने लगा हूँ?' उसके एक हफ़्ते बाद वह यूरोप में छुट्टियाँ मनाने चला गया।

देवकी से नहीं रहा गया। उसने कह ही दिया–'बेटा, तुझे पता है न कि तेरी माँ ने तुझे कैसे पाला है?' वह उठकर बाहर निकल गया।

'आगे से कुछ मत कहा करो उसे।' श्यामा ने दृढ़ता से कह दिया।

'मैंने अपना फ़र्ज़ पूरा कर दिया। आगे भी जैसे क़िस्मत में लिखा है काट लूँगी। इसके बाप ने कौनसे सुख दिए थे, जो मैं इससे उम्मीद करूँगी?' बस उसके बाद से श्यामा के चेहरे पर और स्याही-सी घिर आई। 'जवानी में तो माँ-बाप ने आकर सहारा दे दिया, बुढ़ापा कैसे गुज़रेगा?' सोचते ही उसकी आँखों में एक दहशत का भाव घिर आता। वह आँखें मूँद लेती। एक सफ़ेद चुप्पी की चादर ओढ़े वह दिनचर्या को ढोती रहती। श्यामा मुरझाई टहनी की तरह काम पर जाती, फिर खिंचकर घर आती और बिस्तर पर पड़ जाती। देवकी जानती है कि अब इस मोह-माया के बंधन को भी काटने का समय आ गया है, पर बेटी के मन का घुमड़ता अँधेरा उन्हें प्रकाश की ओर बढ़ने नहीं देता।

देवकी फिर सोफ़े के ऊपर कंबल डालकर लेट गई। हलकी-हलकी बारिश सुबह से हो रही थी। भरी दोपहर में ही शाम घुस आई। घुटने का दर्द उभर आया। बिजली का हीटिंग-पैड घुटने पर रखा। याद आया दिल्ली का घर, सर्दियों की मीठी धूप, कैसे रामदेई कटोरी में तेल गर्म करके, उनके हाथों और पैरों की मालिश कर दिया करती थी। यहीं अमरीका में ही आकर जब उन्हें दिल का दौरा पड़ा था तो लगा, बचेंगी नहीं। प्रिया का रोज़ फ़ोन आता। रोना शुरू कर देती, 'मैं आपको देखने नहीं आ सकती। कहाँ जाकर बस गए हैं आप लोग? वापिस कब आओगे?'

उन्होंने श्यामा की ओर देखा था। कैसे उसे छोड़कर वह लौट जाएँ? श्यामा हिंदुस्तान नहीं जाना चाहती थी। कहती, बच्चे उखड़ जाएँगे।

प्रिया को प्यार से जवाब दिया था, 'बेटी, हमारा क्या पता? तू ही अब घर को सँभाल ले। ख़ाली पड़े घर में कोई भी घुस-पैठ कर सकता है। बाद में जो ठीक समझो बहनों को दे देना।'

प्रिया ने वैसे ही किया। अब वह घर प्रिया और उसके पति का था।

वृंदा गई थी वहाँ। लौटकर आई तो बहुत बिगड़ी।

'आप तो अपना फ़र्ज़ निभाहने यहीं रह गए। हमारा तो मायका भी न रहा। अब बस बहन का घर है।' वह क्या कहतीं?

क़िस्मत ने जो पत्ते फेंटकर उनके आगे डाल दिए, उन्हें स्वीकार करने के अलावा और कुछ हल उनके पास नहीं था।

वह आँखें बंद कर लेतीं। बस आगे-पीछे की ही तो बात है। डॉक्टर साहब तो गए, गए कहाँ? मेरे भीतर ही तो हैं। सीने पर हाथ रखकर वह आँसुओं को बाहर निकलने से रोकने के लिए आँखें और ज़ोर से मूँद लेतीं। होठ ईश्वर का नाम जपने लगते।

खटाक से बाहर का दरवाज़ा खुला। वह शायद नींद से जागीं। श्यामा ने गीला छाता खोलकर दरवाज़े के पास ही रख दिया ताकि पानी निचुड़ जाए। आकर दहलीज़ के पास खड़ी हो गई। घर में अँधेरा था, दोनों एक-दूसरे को आकार से पहचानती थीं। श्यामा अंदाज़ा लगाती रही कि वह सो रही हैं या जागती हैं।

'हरे कृष्णा', उन्होंने धीमी-सी आवाज़ में कहा।

श्यामा ने बत्ती जला दी। वह उसके क्लांत चेहरे को देखती रहीं। इस वक़्त उसकी आँखों के आस-पास काले दायरे और भी गहरा गए थे।

'चाय बनाऊँ?' उन्होंने उठने की कोशिश की।

'आप लेटी रहें मैं बना देती हूँ।'

वह चुपचाप रसोई में से केतली में पानी भरने की आवाज़

सुनती रहीं। फिर केतली की सीटी की, डिब्बे खुलने की। उन्होंने धीरे से ऊपर पड़ा कंबल सरकाया। खड़े होकर दीवार को पकड़ लिया। आकर खाने की मेज़ पर बैठ गईं।

'फल काट गई थी, खाए नहीं ना?'

'भूख नहीं लगी।'

'देखो, तबियत पहले ही ठीक नहीं। अपना ख़्याल रखने की कोशिश किया करो।'

'बेफ़िक्र रहो, मैं तुम पर बोझ नहीं बनूँगी।'

'मैंने यह कब कहा?'

'आगे ही पता नहीं किन कर्मों का फल है कि बेटी के घर आकर रह रही हूँ?'

'बस, बंद करो ये बातें।'

जल्दी-जल्दी चाय ख़त्म करके श्यामा अपने सोने के कमरे में लेटने चली गई। दरवाज़ा अधखुला था। वह सिर्फ़ उसकी पीठ ही देख सकती थीं, चेहरा नहीं।

वह धीरे से उठीं। दीवार का सहारा लेकर बाथरूम तक गईं। मुँह-हाथ धोया। आईने में अपनी शक्ल देखी। कोई अजनबी चेहरा सामने आकर खड़ा हो गया। कितनी बार बदली गई है यह शक्ल? गोरा गोल-मटोल बचपन का चेहरा, गुलाबी कपोल और शर्मीली आँखों वाली युवती का चेहरा, मातृत्व की गरिमा से दीप्त भरा-पूरा चेहरा, उम्र की ढलान से थका हुआ चेहरा और फिर तेज़ी से ढलकता, झुर्रियों से भरा अनुभवी चेहरा और अब नितांत अकेला, जीवन के आख़िरी पड़ाव पर रुका, उस परम सत्य से अपने को शरण लेने की दुआ माँगता, सफ़ेद रक्त-हीन चेहरा। उनकी घबराहट बढ़ गई जैसे अपने ही जीवन की एलबम देख ली हो। हे प्रभु, मेरे हाथ-पाँव चलते रहें। मैं किसी पर बोझा न बनूँ। आकर मंदिर में बैठ गईं। जोत जलाई। अगरबत्ती का धुआँ उस घर के ख़ालीपन को भर गया। वह प्रार्थना में मग्न हो गईं। झुकती चली गईं। सब-कुछ तुम्हें ही समर्पित प्रभु। सब-कुछ तुम्हीं ने दिया, तुम्हीं ने लिया। मेरा कुछ भी नहीं। ना यह देश, ना ही विदेश। ना वह दिल्ली का घर, ना यह अमरीका का घर। ना बेटियाँ, ना डॉक्टर साहिब, ना मैं ख़ुद। सब कुछ तेरा प्रभु सब तेरा। पता नहीं कुछ कब तक यूँ ही वह प्रार्थना में बैठी रहीं।

श्यामा ने धीरे से कंधा छुआ। 'कुछ खाएँगी?' जैसे किसी पंख से प्रश्न छुला दिया।

उन्होंने मौन दृष्टि उठाई। श्यामा के चेहरे पर आँखें टिकी रहीं। बेटी की आँखों में कोई भाव है, जो उनके स्थिर मन में भी एक दर्द की धार लगा देता है। सब-कुछ तो छूट गया, फिर मन से भी छोड़ दिया। पर यह ममता क्यूँ नहीं छूटती?

वह उसके पीछे-पीछे रसोई में चली आईं। खाने की मेज़ पर बैठ गईं।

'खिचड़ी बना दूँ?'

उन्होंने सिर हिला दिया।

श्यामा समझने की कोशिश करती रही, हाँ या ना? फिर उसने दो प्याले दूध के गर्म किए। दो टोस्टों के ऊपर हल्का-सा जैम लगा कर उनके आगे रख दिया। कल की बची सब्ज़ी दो स्लाइसों में भरकर उसने अपने लिए सैंडविच बना लिया।

छोटे से फ़ानूस की रोशनी उन दोनों पर पड़ रही थी। चुपचाप दोनों खाती रहीं।

'कोई फ़ोन आया?' श्यामा ने चुप्पी तोड़ी।

उन्होंने नकारात्मक सिर हिला दिया। श्यामा के चेहरे पर एक निराशा की हल्की सी रेखा उभरी और फिर विलीन भी हो गई। उनकी आँखों ने सब देख लिया। आँखें बेटी के चेहरे पर ही टिकी रहीं और मन पता नहीं कहाँ से कहाँ तक की यात्रा कर आया।

बोलीं, 'तुम डॉक्टर के पास क्यों नहीं जातीं?'

'कौन मैं?' श्यामा सकपका कई।

'तुम ठीक नहीं हो।'

'अब ऊपर जाकर ही ठीक होऊँगी।'

'मेरे जीते जी ऐसी बातें मत कर।'

श्यामा ने माँ के रक्त-हीन चेहरे पर नज़र डाली और फिर झुका ली।

दोनों उठीं तो उनकी छायाएँ दीवार पर उलझ गईं।

'मैं कल माँ को शॉपिंग-मॉल के अंदर ही थोड़ा-सा घुमा लाऊँगी। बेचारी सारा दिन अकेली घर में बंद रहती हैं।' श्यामा ने सोचा।

'मैं इसके लिए कुछ ताज़ा सब्ज़ी बनाकर रख दूँगी।' देवकी ने सोचा।

श्यामा उन्हें कंधे से सहारा देकर उनके बिस्तर तक ले आई। पास वाला डॉक्टर साहिब का पलंग ख़ाली था। देवकी वहीं रुक गईं।

श्यामा लौटने लगी तो देवकी ने रोका, 'सुन!'

वह असमंजस में लौटी।

देवकी ने दोनों बाँहें फैलाकर उसे सीने से भींच लिया। दोनों बड़ी देर तक यूँ ही खड़ी रहीं।

❐ 119 Osage Road
Wayne NJ, USA;
E-mail:aksk414@hotmail.com

धूप

सुदर्शन प्रियदर्शिनी

अब हम साथ नहीं रह सकते।

रेखा नहीं जानती थी कि ये शब्द कैसे अपने-आप आज निकले थे, जो विशाल तक पहुँचने से पहले उसके हाथ में पकड़े चाय के कप पर ठहर गए थे और चाय की ऊपरी सतह पर तैर रहे थे। चाय के कप का कंपन बढ़ गया था। शायद इन शब्दों का भारीपन सतह पर बैठ नहीं पा रहा था।

दोनों की नज़रें मिलीं जैसे ख़ाली कोटर हों और जिनका सब-कुछ बहुत पहले ही झर चुका हो। विशाल की आँखें उस ओर उठीं और फिर जैसे हताहत पक्षी की तरह नीचे बैठती गईं। सुबह-सुबह उसकी आवाज़ में जो रोष होता था, वह वहीं-का-वहीं झाग हो गया था। उसे लगा होगा कि वह शायद रोज़ कुछ ज़्यादा ही कहता या झटकता रहा है।

चाय का कप धीरे-धीरे होंठों की सीमा तक पहुँचने से पहले ही थरथरा गया था और बिन-आवाज़ किए बीच की टेबल पर ढेर हो गया था।

एक अजगर-सी चुप्पी दोनों के बीच पसर गई थी। रेखा जानती थी, वह ऊँचा-ऊँचा बोलेगा, गालियाँ देगा और उसके सारे ख़ानदान की खपच्चियाँ उधेड़ेगा। लेकिन विशाल ने कुछ भी नहीं किया। रोज़-रोज़ की किचकिच का अगुआ आज बिल्कुल चुप्पी साध गया था।

वह उठी और पेटियों का दरवाज़ा खोलकर बाहर घास पर चक्कर काटने लगी। विशाल की सुन्न पड़ी आँखें और उसके हाथ में ठिठकी-काँपती प्याली, बाहर उसके साथ चली आई थी। वह चाहती थी, इस समय वह उससे पूरी तरह कटकर बाहर खुली हवा में साँस ले

जन्म 26 अगस्त, लाहौर (अब पाकिस्तान) में; शिक्षा–हिंदी में पी-एच॰डी॰ (पंजाब यूनिवर्सिटी 1982)। भाषाज्ञान– हिंदी, अँग्रेज़ी। कार्यक्षेत्र–16 वर्ष तक हिमाचल प्रदेश में हिंदी अध्यापन, अँग्रेज़ी पत्रिका फ्रेगरेंस का प्रकाशन तथा अमेरिका में रेडियो व टेलीविज़न कायक्रमों का निर्माण; क्वीनलैंड, ओहायो, अमेरिका में निवास और साहित्य-सृजन। कृतियाँ–सूरज नहीं उगेगा, रेत की दीवार (उपन्यास); काँच के टुकड़े (कहानी-संग्रह); शिखंडी युग, बराह (कविता-संग्रह); भारत व अमेरिका के कई संकलनों में रचनाएँ संकलित; विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन। पुरस्कार-सम्मान–हिंदी परिषद टोरंटो का महादेवी पुरस्कार; ओहायो गवर्नर मीडिया पुरस्कार आदि।

सके, लेकिन उसकी साँस रुक रही थी। चाय की प्याली अभी भी डगमगा रही थी।

उसे स्वयं मालूम नहीं था कि बिना किसी योजना के ये शब्द कैसे आज अचानक उछलकर बाहर आ गए थे। पर वह जानती थी कि ऊपरी तैयारी से ज़्यादा कहीं भीतरी तैयारी होती है, जो अंदर-ही-अंदर कहीं पकती रही थी और बाहर ख़बर तक नहीं हुई। शायद यह उसी का नतीजा था।

अब उसे अंदर की तैयारी के साथ-साथ बाहर की तैयारी भी करनी थी।

कुछ साल पहले के छोटू के शब्द, 'आपको तलाक़ ले लेना चाहिए, मम्मी।'

'हट।' कहकर कैसे उसने छोटे को झिंझोड़ दिया। 'ख़बरदार! जो ये शब्द कभी भूलकर भी ज़ुबान पर लाया।'

शायद उस दिन से कहीं अंदर की तैयारी का बीज पड़ गया था।

आज की सुबह पूरी तरह से उठ चुकी थी। पिछवाड़े के झुटपुटों से बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी और अलसाई-अलसाई धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी।

रेखा ने नाइट सूट बीती रात को बहुत पहले ही अपने ऊपर से उतारकर अलग कर लिया था। वह अक्सर उठते ही सबसे पहले नाइट सूट उतारकर रात को अपने से परे धकेल देती थी। आज भी चाय बनाने से पहले, उसने यही किया था। पर लगा कि रात विशाल की प्याली से अभी तक चिपकी पड़ी है और सारे घर को भी घेरे हुए है।

मालूम नहीं विशाल क्या कर रहा है। वहीं बैठा है या उठ गया है। उसे नहीं लगा कि उसे यह जानने की कोई ज़रूरत होनी चाहिए कि वह क्या कर रहा है। जब साथ नहीं रहना तो यह जानने की इच्छा भी छोड़नी पड़ेगी।

दो कटे हुए हिस्सों को क्या पड़ी है कि वे जानें कि दूसरा हिस्सा क्या कर रहा है।

जबसे वे इस घर में आए हैं, तभी से वह विशाल से कहती रही है कि लॉन के चारों तरफ़ लोहे की रेलिंग लगवा दें– प्राइवेसी रहती है। बच्चे खेलते हैं तो चिंता नहीं रहती और स्वयं को भी कभी-कभी एकांत क्षणों की ज़रूरत पड़ती है। आज उस रेलिंग की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है। पर वह वहाँ नहीं है। बेरोक-टोक सामने वाला आज उसके अंदर झाँक तक सकता है।

बहुत-सी चीज़ें ऐसी हैं, जिन्हें ज़िंदगी-भर करने या पाने की सोचती रही, पर कभी हासिल नहीं कर पाई। बिना पाए भी ज़िंदगी तो कट जाती है। कट गई। जैसे दूसरों की स्कीमों पर बने घरों में उम्र कट जाती है। अपनी मनपसंद की चौखट कभी मिल ही नहीं पाती। इसलिए दूसरों के बनाए हुए साँचों में ढले चले जाते हैं और अपना नापतोल भी भूल जाते हैं। इस घर में कई चीज़ें ऐसी थीं, जो रेखा को शुरू से ही पसंद नहीं थीं। जैसे घर में घुसते ही ड्राइंग रूम बिल्कुल खुला-सपाट पूरी तरह उधड़ा हुआ ...नंगा।

आज क्यों लग रहा है कि सब-कुछ कहीं नियोजित था। वह कहती, 'तुम जानते हो कितने अमेरिकन हो गए हो।'

'अमेरिका में रहना है तो अमेरिकन होने में क्या बुराई है?'

'अमेरिका में सब-कुछ अच्छा नहीं है।'

'ऐसा बुरा भी कुछ नहीं है।'

दोनों में इस विषय पर अक्सर बहस होती रहती। विशेषत: विशाल बच्चों पर स्कूल से पहले और स्कूल के बाद बाहर काम करने पर ज़ोर देता। वे कहीं रेस्टोरेंट में जाते और विशाल एक की बजाय दो अलग-अलग बिल मँगवाता। वह कहीं अंदर से टूट जाती और उसके मुँह का स्वाद कसैला हो जाता। उसका मन करता, उसी समय वहाँ से उठकर चली जाए। कभी-कभी रेखा में हीनता की भावना इन बातों से इतनी गाढ़ी हो जाती है कि वह अपने-आपको कोसती। वही बौड़म है–अभी तक अपने संस्कारों की जकड़ में जकड़ी है। ज़माने के साथ बढ़ नहीं पा रही है। उसके अपने अंदर ये नोंच-खसोट चलती रहती।

पर उसे लगता है धीरे-धीरे टूटते हैं तार। धीरे-धीरे ही टूटते हैं संबंध। यह लुहार की ठोक से नहीं, सुनार की ठुक-ठुक से ही बनते और बिगड़ते हैं। धीरे-धीरे भानुमती का कुनबा, न एक दिन में बनता है और न एक दिन में टूटता है।

आज यह फ़ैसला, जो अचानक एक ठोस निर्णय बनकर निकला, कहीं अंदर पल रहे इसी ज्वालामुखी का विस्फोट था। आज किसी ठोस ज़मीन-आधार या सहारे के बिना भी यह निर्णय स्वयं डटकर उसके सामने खड़ा हो गया। अपने लिए उसके पास कुछ भी नहीं है और विशाल से किसी तरह की कोई अपेक्षा रखना दीवार में सिर फोड़ने वाली बात है। वह तो इतना स्वार्थी और स्वयंसेवी हो गया है कि घर में बने चिकन की बोटियाँ भी पहले अपनी प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं। पर उसे कोई फ़रक़ नहीं पड़ता। यह सड़ाप-सड़ाप बेशर्मी से खाता रहता है।

उसकी इकलौती मैगज़ीन, जो उसने यहाँ आकर, अपनी संस्कृति को क़ायम रखने के लिए चला रखी है, नितांत लँगड़ी है। उसके अधिकतर विज्ञापन भी विशाल ही लाता है और उनके पैसे बाहर-बाहर वसूल कर ख़र्च कर देता है। मैगज़ीन की कंप्यूटर सैटिंग, छापाख़ाना, बाइंडिंग आदि के बिल, वहीं के वहीं खड़े रहते हैं। हर बार जब नए अंक की तैयारी होती तो सभी बिलों के लिए उसे तंग करते और हिकारत और अपमानजनक नज़रों से देखते। वह अपने में इतनी छोटी होती जाती, दिन पर दिन। काफ़ी झिकझिक के बाद विशाल कुछ देता और आंशिक बिल देकर गाड़ी आगे ठिलती ...। कई-कई दिन वह ऐसी क़िल्लतें उठाती और रातों को सो नहीं पाती।

विशाल पर, इस सबका कोई असर नहीं। उसने अब अपने-आपमें यह निर्णय ले लिया था कि अलग होकर वह इस मैगज़ीन को बंद कर देगी। अपने-आपको क़र्ज़ में और नहीं डुबो सकती ...। वह पढ़ी-लिखी है, कहीं भी छोटी-मोटी नौकरी करके अपना पेट पाल लेगी और उसे मालूम है, बच्चे बड़े कर्मठ और मेहनती हैं, अपने बूते पर खड़े हो जाएँगे और हो रहे हैं। यों मैगज़ीन के माध्यम से वह राज्य के गवर्नर और अन्य बड़े ओहदे वाले लोगों को जानती है। बड़े-बड़े अख़बारों के राइटर्स और सचिवों को पहचानती है, पर उनसे नौकरी नहीं माँग सकती। मैगज़ीन बंद हो गई तो अपने-आप व्यक्तित्व का वह भव्य पहलू तिरोहित हो जाएगा। उस पहलू ने आख़िर दिया भी क्या है ...।

घूमते-घूमते वह घर के पिछवाड़े से सामने वाले लॉन में आ गई है। आसमान जैसे रात भर रोया है। सड़क धुली हुई आर्द्र

शाश्वत प्रेम के अमर गीत
ढाई आखर प्रेम के
शचीन्द्र भटनागर
मूल्य : 200 रुपए
प्रकाशक
हिन्दी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार
बिजनौर (उ.प्र.)

चुपचाप बिछी है लिथड़ने के लिए...। विलगता के अपने ध्रुव होते हैं, जिन्हें कभी तुम छूकर विगलित होते हो तो कभी नि:संग रहकर। दो धार की तलवार की तरह काटती है विलगता।

आँख में किरकिरी की तरह चुभते हैं वे क्षण, वे बीते हुए दिन-साल-महीने। जिन सालों-महीनों पर अमेरिका आने से पहले रेखा ने ढेरों उमंगों के महल गाड़ दिए थे, उन सब पर जैसे गाज गिर गई थी। उन सब अरमानों की जैसे किसी ने खटिया खड़ी कर दी थी।

सामने वाले घर की चिमनी का धुआँ थका-थका ऊपर उठ रहा था। बीच की बुर्जियों से आँख-मिचौली खेलती धूप-धुएँ की उड़ान को चक-मक कर रही थी, पर चिमनी की बुर्जी का धुआँ रोशनी को घुटकने की कोशिश कर रहा था।

उसका मन नहीं हो रहा था कि वह अंदर जाए और विशाल का सामना करे। ठहरे हुए जल में पत्थर मारने की उसकी कोई इच्छा नहीं थी ...। अच्छा था, बच्चे घर पर नहीं थे। वह धीरे-धीरे अपना भविष्य तय कर रहे थे—कोई कहीं, कोई कहीं...। रेखा को इसी घड़ी का इंतज़ार था। पर दोहरा इंतज़ार विशाल के बदलने और न बदलने की उम्मीद का भी ...।

अनचाहे सवालों की बेतरतीबियाँ उसके चारों ओर फैल गई थीं ...। हाथ की लकीरें दिशाओं के बदल जाने से बदल जाती होंगी। ग्रह-नक्षत्रों को न मानने से वे अपना प्रभाव नहीं छोड़ देते ...। पूर्व से पश्चिम में आ गए ...। इस पश्चिम का अपना पूर्व और अपना पश्चिम जन्मपत्रियाँ ही उल्टी हो गई थीं।

फिर भी अंदर तो जाना ही था। विशाल की प्रतिक्रिया जानना ज़रूरी था ...। यह नहीं कि वह इस इंतज़ार में थी कि विशाल उसके समक्ष गिड़गिड़ाएगा या माफ़ी माँगेगा। ऐसी कोई अपेक्षा उसके मन में नहीं थी। इस समय उसका निर्णय अटल था, पर उस पर विशाल की मोहर चाहिए थी ...। वह अपने वजूद को मजबूती से पकड़कर रखना चाहती थी ...। अपने इतने बड़े निर्णय को काग़ज़ी नाव की तरह डोलते नहीं देखना चाहती थी।

अंदर आई तो विशाल ऊपर ग़ुसलख़ाने में जा चुका था। ग़ुसलख़ाने के बाहर, उसके कपड़े-तौलिया आदि रखे थे, जो शायद पहली बार उसने खुद रखे थे ...। वह आश्वस्त होकर नीचे उतर आई और कार की चाबी लेकर लाइब्रेरी के लिए निकल गई। उसे उसका उत्तर मिल गया था...।

धूप खुलकर चंदोवे की तरह उसके माथे को छू रही थी।

❐ 246 Stratford Drive
Broadview Heights
Ohio 44147 USA;
E-mail:sudarshandsuneja@yahoo. com

शोध संदर्भ-5

संपादक
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
डॉ॰ मीना अग्रवाल

'शोध-संदर्भ' के पूर्व में प्रकाशित चार खंडों का अपूर्व स्वागत हुआ। इन खंडों में हिंदी-शोध के आरंभ से लेकर सन् 2003 तक स्वीकृत शोध प्रबंधों का वर्गीकृत विवरण दिया गया है। अब **शोध-संदर्भ**-5 प्रकाशित हो गया है, जिसमें सन् 2003 के बाद स्वीकृत शोधप्रबंधों का विवरण प्रकाशित किया गया है।

ग्रंथ में विवरण निम्नलिखित क्रम में दिए गए हैं—

1. शोधकर्ता का नाम
2. जन्मतिथि
3. शोध का विषय
4. विश्वविद्यालय का नाम
5. उपाधि वर्ष
6. निदेशक का नाम व पता
7. प्रकाशन का विवरण
8. उपलब्ध पता

इस विशिष्ट ग्रंथ का मूल्य 895 रुपए है, किंतु शोध-निदेशकों, हिंदी-प्राध्यापकों तथा शोध-छात्रों को यह ग्रंथ मात्र 450 रुपए में दिया जाएगा।

ग्रंथ की प्रतियाँ सीमित संख्या में मुद्रित की गई हैं। अत: निराशा से बचने के लिए अपना आदेश तथा धनराशि का बैंक ड्राफ्ट यथाशीघ्र निम्न पते पर भेजिए। सी॰बी॰एस॰ शाखाओं के चैक स्वीकार्य होंगे।

हिंदी साहित्य निकेतन
16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ.प्र.)
01342-263232, 09368141411

कौनसी ज़मीन अपनी?

डॉ॰ सुधा ओम ढींगरा

'ओये मैंने अपना बुढ़ापा यहाँ नहीं काटना, यह जवानों का देश है, मैं तो पंजाब के खेतों में, अपनी आख़िरी साँसें लेना चाहता हूँ।'

जब वह अपने बच्चों को यह कहता, तो बेटा झगड़ पड़ता–'अपने लिए आप कुछ नहीं सहेज रहे और गाँव में ज़मीनों पर ज़मीनें ख़रीदते जा रहे हैं।'

वह मुस्कराकर कहता–'ओए पुत्तर, तूँ और तेरी भैण ने मेरा सिर ऊँचा कर दिया है, अमरीका में मेरी मेहनत सफल कर दी है। आसमान छू लिया है मैंने तो। तूँ डाक्टर बन रहा है और तेरी भैण वकील। बेटा जी, इससे ऊपर तो मुझे और कुछ नहीं चाहिए। तुम नहीं समझ सकते, अभी बाप नहीं बने हो ना।

बेटा बहस करता–'वह सब ठीक है पापा जी, पर एक घर तो बनवा लें, सारी उम्र दो बैडरूम वाले टाउन हाउस में गुज़ार दी। कल को हमारे बच्चे आपके पास आएँगे, तो कहाँ खेलेंगे?'

'पुत्तर जी, पंजाब के खेतों में बड़ा खुला घर बनवाऊँगा, वहाँ खेलेंगे। जब हम यहाँ सबसे मिलने आएँगे, तब तेरे और तेरी भैण के पास रहेंगे, वहाँ खेलने के लिए काफ़ी जगह होगी।'

बेटा उनकी ज़िद के आगे हथियार डाल देता, बेबस सिर झटककर बुदबुदाता घर से बाहर निकल जाता–'ही विल नैवर चेंज।'

मनविंदर भी तो बेबस हो जाती थी, दारजी और बेजी की चिट्टी आते ही मनजीतसिंह सोढी नवाँ शहर (पंजाब) में अपने भाइयों को ज़मीनें ख़रीदने के लिए पैसे भेज देता था...

मनविंदर तड़पकर रह जाती, समझाने

जन्म 7 सितंबर 1959, जालंधर, पंजाब (भारत) में; बी॰ए॰ आनर्स, एम॰ए॰, पी-एच॰डी॰ (हिंदी), पत्रकारिता में डिप्लोमा; हिंदी एवं पंजाबी की लोकप्रिय रचनाकार; साहित्य की लगभग सभी विधाओं में लेखन; विद्यार्थी जीवन से लेखन में सक्रिय; 1982 से अमेरिका में; लेखन के अतिरिक्त सामाजिक कार्यों और अमेरिका में हिंदी के प्रचार-प्रसार में संलग्न। पुरस्कारों की लंबी सूची। कनाडा की पत्रिका 'हिंदी चेतना' की संपादक; कृतियाँ– काव्यसंग्रह–तलाश पहचान की, धूप से रूठी चाँदनी, सफ़र यादों का, माँ ने कहा था (काव्य सी॰ डी॰), पैरां दे पहाड़ (पंजाबी); परिक्रमा (पंजाबी से अनुवादित हिंदी-उपन्यास), कहानी-संग्रह–वसूली; पंजाबी में संस्मरण–संदली बुआ; अमेरिका के कवियों की कविताओं का संकलन 'मेरा दावा है' संपादित।

की सब कोशिशें बेकार हो जाती थीं–'सिंह साहब, घर के ख़र्चों की ओर भी ध्यान दीजिए, ठीक है बच्चे स्कॉलरशिप पर पढ़ रहे हैं, पर उनके और भी तो ख़र्चे हैं, चार कारों की किश्तें जाती हैं, इतनी ज़मीनें ख़रीदकर क्या करेंगे!'

'मनविंदर कौरे, जाटों की पहचान ज़मीनों से होती है।' बड़े गर्व से छाती चौड़ी कर मनजीतसिंह कहता।

यही बात झगड़े का रूप ले लेती, पर कितनी पहचान सरदार जी, कहीं तो अंत हो। वर्षों से ज़मीनें ही तो ख़रीद रहे हैं आपके घर वाले। पैसों का कोई हिसाब-किताब नहीं, यहाँ ज़मीन बिकाऊ है, वहाँ ज़मीन बिकाऊ है, यह टुकड़ा ख़रीद लो, गाँव की सरहद से लगे खेत ले लो। किल्ले पर किल्ले इकट्ठे करते जा रहे हैं। मनविंदर का पारा चढ़ते देख मनजीत घर से बाहर दौड़ लगाने चला जाता और फिर दूसरे दिन ही एक चैक पंजाब नेशनल बैंक में दार जी के नाम भेज देता। मनविंदर बस रोकर रह जाती।

रोई तो वह तब भी थी, जब 30 वर्ष पहले मनजीत सिंह सोढी से शादी हुई थी। हालाँकि उसका तो सारा परिवार अमेरिका में था, फिर भी वह रोई थी, दादा-दादी को छोड़ते समय। मनविंदर के दो भाई यूबा सिटी (कैलिफ़ोर्निया) के खेतों में काम करते थे। नाजायज़ तरीक़े से, वे अमेरिका में आए थे, पर मैक्सिकन लड़कियों से शादी कर जायज़ हो गए थे, यानी ग्रीन कार्ड होल्डर। पाँच साल बाद अमरीकी सिटीज़न बनकर उन्होंने अपना पूरा परिवार बुला लिया था। तब इमिग्रेशन के क़ायदे-क़ानून इतने सख़्त नहीं थे, जितने अब हैं। 6 फुट लंबे, कसरती, सुगठित गोरे सुंदर सिख मनजीत सिंह को दादा-दादी ने ही तो पसंद किया था, ताकि मनविंदर की क़द्र कर सके। नौजवान मनजीत, मनविंदर के साथ आँसू बहाता अमरीका आ गया था।

मनजीत अधिक पढ़ा-लिखा नहीं

था और मनविंदर नहीं चाहती थी कि उसके भाइयों की तरह उसका पति भी खेतों में काम करे। शादी से पहले ही अपने भाइयों को समझाकर, कायल करके, उसने उनसे बैंक में अग्रिम राशि-डाउन पेमैंट के रूप में दिलवा दी थी, और गैस स्टेशन का लोन लेकर, कैरी (नार्थ कैरोलाइना) में गैस स्टेशन ख़रीद भी लिया था। शादी के बाद भारत से वे सीधे कैरी ही आए थे। मनजीतसिंह को जब तक ग्रीन कार्ड नहीं मिला, मनविंदर गैस स्टेशन के व्यवसाय में मुख्य भूमिका में रही तथा बाद में मनजीत सोढी उसका मालिक हो गया। मनविंदर सिलाई-कढ़ाई में माहिर थी। गैस स्टेशन मनजीत के हवाले करके, उसने उसी समय, अमरीकी दुल्हनों के कपड़े सिलने की दुकान शुरू कर दी, जो बाद में 'वैडिंग गाउन बुटीक' बन गया। बुटीक बहुत चल निकला और उसका काम इतना बढ़ गया कि बीस लोग मनविंदर के साथ काम करने लगे, कुछ भारतीय मूल के थे तथा कुछ स्थानीय। अपने आकर्षक व्यक्तित्व और मधुर बोली से, मनजीत सिंह कैरी शहर के सब समुदायों के लोगों में लोकप्रिय हो गया। तब गिने-चुने भारतीय थे, अब तो चारों ओर भारतीय ही नज़र आते हैं। लोग उन्हें प्यार से वीर जी और मनविंदर को भाभी जी कहने लगे।

तबसे अब तक मनजीत का एक ही सपना रहा कि बुढ़ापा भारत में बिताना है। मनविंदर मनजीत की इस उत्कंठा के आगे मजबूर हो चुकी थी, उम्र के इस पड़ाव में वह भारत जाना नहीं चाहती थी, यह देश उसे अपना-सा लगता, उसका पूरा परिवार अमेरिका में फैला हुआ है। साथ-साथ फले-फूले वे मित्र, सालों पहले बनाए रिश्ते, जो समय के थपेड़ों से प्रगाढ़ हुए, सब-कुछ छोड़ना उसके लिए आसान नहीं था ... ये रिश्ते जन्म से मिले रिश्तों से कहीं गहरे हो गए थे ... जीवन की कड़कती धूप, बरसात और ठंडक ने इन्हें पका दिया था। भारत के रिश्तों के लिए तो वे बस मेहमान बनकर रह गए थे, जो साल या दो साल में एक बार उन्हें, रिश्तेदार होने व अपनेपन का अहसास दिलाते थे। मनजीत आज भी तीस साल पुराने संबंधों में ही जी रहा था। समय का परिवर्तन भी उसकी सोच व रिश्तों के प्रति दृष्टिकोण में कोई अंतर न ला सका। भारत की प्रगति और बदलता परिमंडल भी उसकी ठहरी सोच के तालाब में कंकर फेंक, लहरें पैदा नहीं कर सका था। मनजीत को समझाना मनविंदर के लिए बहुत मुश्किल हो रहा था, वह हर समय तनाव में रहने लगी थी।

बच्चों ने अपनी पसंद से शादियाँ करवा लीं ... मनविंदर ने सोचा कि शायद अब मनजीत के स्वभाव में कुछ परिवर्तन आ जाए, घर में बहू और दामाद आ गए हैं, पर मनजीत अपने-आपको हर ज़िम्मेदारी से मुक्त समझने लगा और मन-ही-मन पंजाब में घूमता रहता ... अपने खेतों में पहुँच जाता। तीनों भाई गन्ने के खेतों में घूमते, गन्ने चूसते, फिर गन्ने के रस से दार जी गर्म-गर्म गुड़ बनाते और तीनों भाई गर्म गुड़ की भेली सूखी रोटी के साथ खाते, शक्कर में एक चम्मच देसी घी और डलवाने की मनजीत ज़िद करता, छोटे भाई बिलबिला कर पैर पटक-पटककर अपनी कटोरियाँ बेजी के आगे करते ... ऐसे में बेजी बड़ी समझदारी से दोनों छोटों को प्यार से सहलातीं, मुस्कराते हुए कहतीं-'मनजीता मेरा जेठा पुत्तर है, इसने वड्डा होकर सानूँ सब नूँ सँभालणा है, इस नू ताक़त दी बहुत ज़रूरत है।' और दोनों छोटों की कटोरी में आधा-आधा चम्मच घी डालकर देतीं। सरसों का साग और मक्कई की रोटी परोसते समय भी, बेजी चाटी में हाथ डालकर, मुट्ठी भर मक्खन, उसके साग पर डाल देतीं और लस्सी के छन्ने को भी मक्खन से भर देती थीं। छोटों को वे आधे हाथ के मक्खन में ही टाल जातीं।

नींद में भी मनजीत गाँव वाले घर पहुँच जाता ...आधुनिक सुविधाओं से सुसज्जित पक्का घर, ट्रैक्टर, कामगार और ... बेजी का बार-बार मनजीत का माथा चूमना, छोटों का गले लगना और साथ सटकर बैठना, दार जी का अपनी सफ़ेद दाड़ी पर हाथ फेरते हुए गर्दन अकड़ाकर अपने दोस्तों को सुनाना-'पुत्तर होवे ताँ मनजीते वरगा, अमरीका जा के वी एह सानूँ नहीं भुलिया। साडा पेट भर गया, पर एह डॉलर भेजता नहीं थकिया ...ज़मीनों जट्टों दा स्वाभिमान हुंदा है ... मेरे पुत्तर ने मेरा मान रखिया।'

सुबह मनजीत तरोताज़ा और ऊर्जा से भरपूर उठता ...सारा दिन इसी तरंग में रहता कि इतना प्यार करनेवाले परिवार में बुढ़ापा कितना बढ़िया गुज़रेगा। बेटा-बेटी तो अपनी ज़िंदगी में व्यस्त हो गए हैं। कभी सोचता कि ज़मीनों के दो-चार टुकड़े बेचकर गाँव का स्कूल ठीक करवा दूँगा, दीवारें काफ़ी गिर गई हैं, कुछ कंप्यूटर भी ले दूँगा ...बच्चों को पढ़ाई की सख़्त ज़रूरत है, उसकी प्राथमिकता होनी चाहिए। अगर वह पढ़ा-लिखा होता, तो अमरीका में इतनी सख़्त मेहनत न करता, डाक्टर, साईंटिस्ट, इंजीनियर बनकर वह भी संपन्न जीवन जीता।

मनजीत अपने-आपसे बातें करता। 'दार जी नहीं मानेंगे, वे गुरुघर को चंदा देना चाहेंगे। बेजी को समझाकर उन्हें भी मना लूँगा।'

सुखद कल्पनाओं और भारत लौटने की चाह में वह दिन गिन रहा था।

अंततः वह दिन भी आ गया। मनजीत को गैस स्टेशन ख़रीदने वाला मिल गया, पार्टी ऐसी थी, जिसने उनका बुटीक भी ख़रीद लिया।

बस अब जल्दी-जल्दी घर का सारा सामान गैराज सेल में रखा गया और कुछ सामान बच्चे ले गए। जो नहीं बिका,

उसे विएतनाम वैटेंरस वाले अपने ट्रक में उठाकर ले गए। मनजीत को अमेरिका में दिन काटने मुश्किल हो रहे थे और मनविंदर उदास-परेशान रहने लगी, उसके सिर में हर समय दर्द रहने लगा। बात-बात में झगड़ना दिनचर्या हो गई थी। मनजीत की दृढ़ता के आगे, भारत जाने का वह खुलकर विरोध नहीं कर पा रही थी, चुप-शांत यंत्रवत्-सी वह सारे काम कर रही थी।

'बैंक जाकर मैं सारा पैसा पहले ही वहाँ परिवार में भिजवा देता हूँ, ताकि जाते ही काम शुरू करवा दूँ।' मनजीत के इस कथन से मनविंदर के अंदर का लावा ज्वालामुखी बन फट पड़ा... 'ख़बरदार! सरदार मनजीतसिंह, अगर इस पैसे को हाथ लगाया। मैं और हमारे बच्चे भी आपका परिवार हैं, सिर्फ़ पंजाब में ही आपका परिवार नहीं बसता ...और आप तो वर्षों से कहते आए हैं, कि वहाँ कुछ ज़मीन बेचकर सारे काम पूरे करेंगे, कल ही मैं जाकर इसे वकोविया बैंक में जमा करवा दूँगी सी॰डी॰ में।'

मनविंदर की कड़क आवाज़ भी मनजीत को विचलित नहीं कर पाई और वह अपने मीठे लहज़े में फिर बोला, 'सरदारनी जी, इतना ग़ुस्सा ठीक नहीं, हमने इस देश में वापिस थोड़े ही आना है, गए तो गए, पलटकर क्या देखना।'

मनविंदर बिफर पड़ी, 'क्या बच्चों को मिलने नहीं आएँगे? तब उनसे पैसे माँगेंगे, पोते-पोती, नवासे-नवासी को गिफ़्ट देने के लिए बच्चों के आगे हाथ फैलाएँगे।'

वह शांत लहज़े में बोला, 'ओ मेरी हीरे, अपने राँझे की बात ग़ौर से सुन, हमारे बच्चों को इस पैसे की कहाँ ज़रूरत है। डाक्टर और वकील के पास तो रब्ब की मेहर होती है... गिफ़्ट हम पंजाब से लाएँगे।'

मनविंदर का धैर्य अब जवाब दे गया था। 'नवाँ शहर में इस पैसे की ज़रूरत है? जहाँ ज़मीनों की क़ीमतें आसमान छू रही हैं। अपनी ज़िद पर अगर अड़े रहे, तो आप अकेले ही भारत जाएँगे, मैं यहाँ इसी टाउन हाउस में रहकर, बच्चों को मिलने जाती रहूँगी और आप पंजाब में अपने परिवार के साथ बुढ़ापा बिताना।'

यह सुनते ही मनजीत ढीला पड़ गया ... मनविंदर के व्यक्तित्व के इस पहलू से वह वाक़िफ़ था। बेवजह वह उत्तेजित नहीं होती, पर अगर कोई निर्णय ले ले, तो उसे वापिस मनाना भी आसान नहीं।

आसान तो मनजीत को कुछ भी नहीं लग रहा, दो दिन बाद की वापिसी है और एक-एक पल काटना कठिन हो रहा है। मन खेतों की मेढ़ों और पैलियों में झूम रहा है और धड़ यहाँ घिसट रहा है। पंजाबी गुट और अन्य समुदायों ने विदाई की पार्टी दी, पर मनजीत ने बस औपचारिकता निभाई। मनजीत का मन अमेरिका से उचट गया था। कैरी से न्यूयार्क और न्यूयार्क से दिल्ली तक का सफ़र एयर इंडिया के जहाज़ में, उसने तो सोकर या रब ने बनाई जोड़ी फ़िल्म देखकर काटा। टाउन हाउस को बेचा नहीं गया, बच्चों ने ज़िद करके, तर्क के साथ कि उनका बचपन और जवानी उसमें बीती है, उसे अपने लिए रख लिया था। फिलहाल उसे किराये पर चढ़ा दिया गया, किराएदार को सौंपने और सामान की पैकिंग करने से मनविंदर बहुत थक गई थी, वह तो सारे रास्ते सोती गई। दोनों की आपस में कोई ज़्यादा बातचीत नहीं हुई।

मनविंदर कई दिनों से गुमसुम थी, मतलब की बात करती, मनजीत कुछ पूछता, बस उसी का उत्तर देती, उससे ज़्यादा कभी न बोलती। पर उसके पास मनविंदर की तरफ़ ध्यान देने का समय ही कहाँ था ... वह तो भारत जाने के सरूर में मस्त था, जहाज़ में भी उसे महसूस नहीं हुआ कि मनविंदर किस अप्रतिम वेदना से गुज़र रही है। मूवी देखकर वह सो गया...।

मनविंदर को प्यास लगी और उसकी आँख खुल गई। एयर होस्टेस से उसने पानी मँगवाया, साथ ही सीट पर बच्चों की तरह बेख़बर सोए मनजीत को वह अपलक निहारती रही–

इसके प्यार की ख़ातिर वह गृहस्थी की तकली पर सुतती रही, पर कभी उफ़ नहीं की... अब तो उसकी भावनाएँ ही अटेरनी पर चढ़ गई हैं ... वह बस अटेरी जा रही है... और इसे ख़बर भी नहीं है...।

आदमी अपनी धुन में औरत से इतना बेख़बर कैसे हो जाता है... जिससे प्यार करता है, उसकी अग्नि-परीक्षा लेते हुए, उसका दिल क्यों नहीं जलता... दादी कहती थी, आदमी की ज़िद बच्चों-सी होती है, प्यार से मना लेते हैं... पर यहाँ तो प्यार, ग़ुस्सा कुछ काम नहीं आया... सोचों ने उसका सिर भारी कर दिया और थकान भी शरीर को ढीला करने लगी, नींद हावी हो गई... उसने सिरहाना उठाया, जहाज़ की खिड़की के साथ टिकाया और टाँगों को अपनी छाती के साथ लगाकर, कुर्सी पर गठड़ी-सी बनकर, सिरहाने से टेक लगाकर, कंबल ओढ़कर सो गई...

जैसे ही जहाज़ ने इंदिरा गांधी एयर पोर्ट का रनवे छुआ, मनजीतसिंह की आँखों में आँसू आ गए '30 वर्षों की क़ैद से छूटकर आ रहा हूँ।' कहते हुए उसने नैपकिन से अपने आँसू पोंछे। मनविंदर खिड़की से बाहर एयर पोर्ट की चहल-पहल देखती रही। कस्टम की औपचारिकता निभाकर जब सरदार मनजीतसिंह एवं बीवी मनविंदर कौर बाहर निकले, तो भतीजों ने फतेह बुलाकर स्वागत किया। मनजीत बाग़-बाग़ हो गया...दो भतीजे वैन लेकर आए थे। दिल्ली से नवां शहर जाने में पाँच घंटे लगे।

ऊबड़-खाबड़ सड़कों के हिचकोले, चारों ओर उड़ती धूल देख पहली बार मनविंदर बोली–'भारत कितनी भी तरक़्क़ी कर ले, सड़कें कभी भी ठीक नहीं होंगी। प्रदूषण तो बढ़ता ही जा रहा है। मनजीत ने बीच में ही बात काट दी–

'सोनिओ, अपने देश की तो धूल मिट्टी का भी आनंद है। 30 वर्षों में गोरों की धरती पर मिट्टी का सुख भी नहीं मिला।'

'ताया जी, वहाँ बिलकुल धूल नहीं होती, कैसे इतनी सफ़ाई रखते हैं?' बड़े भतीजे सुखबीर ने पूछा।

'अमरीका बड़ी प्लानिंग के साथ बना हुआ है। बड़ी-बड़ी इमारतें मिलेंगी या साफ़-सुथरी सड़कें, खुली जगह तो बहुत कम देखने को मिलती है। ख़ाली जगह को भी घास और फूलों से भर देते हैं, ताकि धूल न उड़े।'

'पर ताया जी, सड़कों की मरम्मत करते समय और इमारतें बनाते समय तो गंद पड़ता होगा, धूल-मिट्टी उड़ती होगी।'

'पुत्तर जी, उनके काम करने के ढंग भी बहुत विचित्र हैं, एक ट्रक फैला-बिखरा सामान उठा ले जाता है और दूसरा पानी की टंकी लाता है और सारी जगह धो जाता है।'

सुखबीर आँखें फैलाकर बोला, 'हैं, ताया जी, फिर तो आप स्वर्ग में रहते हैं।'

'नहीं ओय, स्वर्ग में काले पानी की सज़ा है, सब-कुछ ऊपरी, बनावटी और बेरंगी दुनिया। भावनाएँ, गहराई, सच्चाई और रस तो अपने देश में है।' मनजीत सिंह अपनी ही मस्ती में बोलता जा रहा था। भतीजे सुन रहे थे और मनविंदर पिछली सीट पर इन सब बातों को अनसुना करते हुए सो गई थी।

घर में प्रवेश करते ही बेजी, दार जी ने आशीर्वाद के साथ दोनों के माथे चूम लिए। ऊपरी मंज़िल पर एक कमरा ठीक कर दिया गया था। उनका सामान वहीं टिका दिया गया। जल्दी-जल्दी खाना खिलाया गया। एक बात ने दोनों का ध्यान आकर्षित किया कि रसोई भतीजों की पत्नियों के हवाले थी और उनमें से कोई भी सुघड़ गृहणी जैसा व्यवहार नहीं कर रही थी ...सभी काम को निपटाने और जल्दी-जल्दी समेटने में लगी हुई थीं। उनका अधैर्य स्पष्ट नज़र आ रहा था।

आधी रात में मनविंदर पेशाब के लिए जब नीचे गई, तो मनजीत भी उसके साथ नीचे आया। ऊपर कोई बाथरूम नहीं था, नई जगह और घना अँधेरा था और ...वह जानता था कि वह अँधेरे से बहुत डरती है। उसने उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा था– 'मेरी रानी, कुछ दिन तक़लीफ़ सह ले, मैं तुझे बहुत बड़ा और अच्छा-सा घर बनवाकर दूँगा। बहुत साल तुमने इंतज़ार किया है।' मनविंदर कुछ बोली नहीं थी, बस गहरी साँस लेकर चुप हो गई थी।

दूसरे दिन मनजीत तो भाई-भतीजों के साथ खेतों में चला गया। पूरे गाँव और आस-पास की अपनी ज़मीनें देखने।

मनविंदर बहुओं के साथ रसोई में जाने लगी तो बेजी ने टोका 'नहीं, मन्नी कुज दिन ताँ आराम कर लै, करन दे इन्हां नु काम।' बेजी प्यार से मनविंदर को मन्नी कहते थे। 'बेजी, मैं ख़ाली नहीं बैठ सकती। साथ काम करवा देती हूँ। जल्दी निपट जाएगा।'

मनविंदर रसोई में गई, तो थोड़ी देर बाद सब बहुएँ एक-एक करके वहाँ से खिसक गईं। कोई कपड़े धोने और कोई कपड़े सुखाने के बहाने। मनविंदर अकेली ही रसोई में लगी रही। उसे तो हर तरह के काम की आदत थी। अमेरिका में हलवाई, धोबी, बावर्ची, मेहतरानी वह ख़ुद ही तो थी। उसे हैरानी तो इस बात की हुई कि एक भी देवरानी उसका साथ देने नहीं आई। एक सिर में तेल लगाती रही, दूसरी बेजी के और अपने शरीर की मालिश करती रही। वे उससे बेपरवाह, बेख़बर धूप में बैठीं, अपना बदन सहलाती रहीं। सारा कुनबा जब थका-हारा घर लौटा, तो मनविंदर ने बड़े प्यार और मुहब्बत से सबको खाना खिलाया।

लक्खी से रहा नहीं गया, कह ही दिया उसने, 'भाबी, बेजी दी रसोई दी याद आ गई, आप दियां छोटियाँ देवरानियाँ तां निक्कामियाँ ने, नुआँ उन्हां तो वी गईयाँ गुज़रियाँ, बेजी ताँ सब कुज छड़ के बैठ गए, इन्हांनू अकल कौन दवे?'

'वीरा, ऐसा नहीं कहते घर की औरत को, वह तो लक्ष्मी का स्वरूप है। उसको सम्मान देते हैं, चाहे वह कैसी भी हो।' मनविंदर ने मुस्कुराकर कहा।

मुस्कुरा के ही तो लक्खी ने पूछा था– 'भराजी, किन्ने दिन रहन दा इरादौ, कमरा छोटे काके दै। दोनों पति-पत्नी ड्राईंग रूम विच सोंदे ने।'

'हम यहाँ हमेशा के लिए, आप लोगों के साथ रहने, परिवार की धूप-छाँव का आनंद लेने आएँ हैं।' मनजीत ने अपने दार जी से कहा, इतना सुनते ही सबके चेहरों के भाव बदल गए, एक बेरुख़ी-सी झलक आई, उन सबके मुस्कराते चेहरों पर।

'बच्चे तो अमेरिका च ने, उन्हां तो बिना तेरा दिल किंज लगेगा?' बेजी ने निर्विकार भाव से कहा।

'बेजी, हर साल हम उन्हें वहाँ मिलने जाएँगे और छुट्टियों में वे यहाँ हमारे पास आएँगे। अमेरिका में, मैंने आप सबको बेइंतिहा याद किया... यहाँ आने तक आप सबको बहुत मिस करता रहा, माँ आप मेरे दिल में, हर समय रही हैं।'

'30 सालाँ बाद वी।'

'हाँ माँ, 30 सालाँ बाद वी। जहाँ मिली रोटी वहाँ बाँधी लँगोटी-अमरीका के इस कल्चर को, मैं अपना नहीं पाया। आपको नहीं पता, मैंने वहाँ दिन कैसे काटे?' मनजीत ने वहाँ जीवन कैसे बिताया ... किसी ने यह जानने में रुचि नहीं दिखाई।

लक्खी का चेहरा कठोर हो गया– 'ज़मीनों पे हक़ जमाने आए हो?'

'हक़ कैसा लक्खी, मैंने ही तो पैसा भेजा था, सारी ज़मीनें हम सबकी ही तो हैं। एक टुकड़ा बेचकर, मैं अपना घर बनवा लूँगा, ताकि सब आराम से रह सकें।' मनजीत का स्वर दृढ़ था।

बेजी की कड़कती आवाज़ उभरी– '30 साल पहिलाँ मेरा पुत्तर मैथें खोह लिया, हुन ज़मीना ..., एह सब तेरे कारनामे ने, मेरा मनजीता ऐसा नहीं ए, कंजरिए।'

मनजीत और मनविंदर सन्न रह गए।

सहनशीलता का दामन छोड़ते ही, शर्म का पर्दा भी हट गया, मनविंदर भड़क उठी। पानी वारकर आप ही ने कहा था– 'नुएँ सँभाल मेरे पुत्तर नूँ, तेरे हवाल कीता, इसनूँ अमरीका विच पक्का करवा दईं। डालराँ ने ताँ पिंड दे पिंड अमीर कर दित्ते ने, इसदी कमाई साडी वी ग़रीबी हटा दवे गी।'

'ग़रीबी तो हट गई, पर पैसे की गर्मी ने, रिश्ते ठंडे कर दिए। इस उम्र में कुफ़र ना तोलें बेजी, रब्ब से डरें, मनजीत आपका सौतेला बेटा नहीं, आपका हिस्सा है। क्यों आप मुझे गालियाँ देकर मुँ गंदा कर रही हैं? हम कुछ छीनने नहीं आए, बस आपके दिलों में थोड़ी-सी जगह चाहते हैं, सालों से आपके नाम की माला जपने वाला, आपका पुत्तर यहीं रहना चाहता है, आपके पास।'

दार जी बिना कुछ कहे उठ गए और उनके साथ ही सब अपने कमरों में चले गए।

कुछ दिन दोनों के लिए बहुत कष्टप्रद रहे। घर में सबने बोलचाल बंद कर दी थी। मनजीत अपने ही घर में अजनबी बन गया था। मनविंदर का ग़ुस्सा उसकी बेबसी देखकर शांत हो गया था। वह उसके लिए चिंतित हो उठी थी। परिवार के प्रति उसकी भावनाएँ मनविंदर से छिपी हुई नहीं थीं। जानती थी कि कितनी शिद्दत से वह अपने परिवार को चाहता है और उनके व्यवहार ने उसे भीतर तक तोड़ दिया था। वे स्वयं ही खाना बनाते, अकेले खाते, सब उनसे कटे-कटे, दूर-दूर रहते।

मनजीत अब भी अपने पुराने बेजी-दारजी और भाइयों के सपने लेता। सपना टूटने के बाद, करवटें बदलते रात निकाल देता। वर्तमान स्थिति उसे मानसिक तनाव दे रही थी। वह स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि माँ-बाप, भाई ऐसे कैसे इतना बदल सकते हैं! ज़मीनों ने रिश्ते बाँट दिए थे, जिन पर सरदार मनजीतसिंह ने सारी उम्र मान किया था। मन और बुद्धि में संघर्ष चल रहा था, कभी मन अर्जुन बन, रिश्तों के भावनात्मक पहलू की दुहाई देता और कभी बुद्धि कृष्ण बन, हक़ की लड़ाई को प्रेरित करता। अगर रिश्ते आँखों पर पट्टी बाँध लें, तो उन्हें खोलना ही पड़ेगा। उसके अंदर महाभारत का युद्ध चल रहा था, भावनाएँ पांडव बने रिश्तों का स्वभाव एवं व्यवहार समझ नहीं पा रही थीं, उसका क़सूर क्या था? रिश्तों को हद से ज़्यादा चाहना या उस चाहत में सब-कुछ भूल जाना और स्वयं को मिटा डालना। संबंधों के लाक्षागृह के जलने से अधिक वह बेजी, दार जी के बदलते मूल्यों और मान्यताओं से आहत हुआ था।

इसी द्वंद्व में, वह एक रात पानी पीने उठा, तो नीचे के कमरे में कुछ हलचल महसूस की, पता नहीं क्यों शक-सा पड़ गया। दबे पाँव वह नीचे आया, तो दार जी के कमरे से फुसफुसाहट और घुटी-घुटी आवाज़ें आ रही थीं।

दोनों भाई दार जी को कह रहे थे– 'मनजीते को समझाकर वापिस भेज दो, नहीं तो हम किसी से बात कर चुके हैं, पुलिस से भी साँठ-गाँठ हो चुकी है। केस इस तरह बनाएँगे कि पुरानी रंजिश के चलते, वापिस लौटकर आए एन॰आर॰आई॰ का क़त्ल। केस इतना कमज़ोर होगा कि जल्दी ही रफ़ा-दफ़ा हो जाएगा, बेशक अमरीकी सरकार भी ढूँढती रहे। कोई सुराग़ नहीं मिलेगा, ऐसी अट्टी-सट्टी की है।' यह सुन मनजीतसिंह का सारा शरीर पसीने से भीग गया और वह वहाँ खड़ा नहीं रह सका– शरीर की सारी ऊर्जा कहीं लुप्त हो, बदन को ठंडा कर गई। चलने की हिम्मत नहीं रह गई थी। अपने-आपको घसीटता हुआ... वह कमरे में लौटा और बिस्तर पर धड़ाम से गिर गया। मनविंदर की नींद टूट गई, वह उसके काँपते शरीर और चेहरे का उड़ा हुआ रंग देखकर, बहुत घबरा गई। मनजीत ने बाँईं ओर अपने दिल पर हाथ रखा हुआ था ...।

'सरदार जी, दर्द हो रहा है तो डाक्टर को ...। 'मनविंदर ने अपनी बात अभी पूरी नहीं की थी कि मनजीत ने उसका हाथ अपने सीने पर रख लिया। 'दर्द नहीं, दिल टूटा है, अपनों ने तोड़ा है। टूटे दिल के टुकड़े सँभाल नहीं पा रहा हूँ। तेरी बातों को अनसुना कर, मैं सारी उम्र तुझे पराई समझता रहा और अब अंदर तड़पन है, जो सुनकर आया हूँ, क्या वह सच है? जान नहीं पा रहा हूँ कि कौनसी ज़मीन अपनी है?'

मनविंदर ने अपनी उँगली मनजीत के होंठों पर रखकर, उसे चुप करा दिया। वह बहुत कुछ समझ गई थी और उछलकर बिस्तर से नीचे उतरी। सौष्ठव देह-यष्टि वाली मनविंदर ने मनजीत को बाँहों में भरकर उठने में मदद की, अपना पर्स उठाया और आधी रात में ही दोनों पिछले दरवाज़े से निकल गए। उनके गाँव के नीचे वही ज़मीन थी, जिसके लिए मनजीत उम्र-भर डॉलर भेजता रहा। चारों तरफ़ गहरा काला अँधेरा था।

❐ 101 Guymon Ct., Morrisiville, NC 275660 USA
E-mail-sudhaom9@gmail.com
Phone (919) 678-9056

यादों के झरोखे में काका

डॉ॰ मीना अग्रवाल

जब कभी जीवन में नीरसता आ जाती है या फिर मन पर उदासीनता हावी होने लगती है, यादें चुपके से आकर नीरस और उदासीन क्षणों में मिसरी घोल देती हैं। कभी-कभी बचपन के घर की याद और माँ, पिता और भाई-बहिनों की याद मन को सहलाने लगती है और हमारे जीवन में सरसता आ जाती है। आज हम इक्कीसवीं सदी में जी रहे हैं और अपनी व्यस्त ज़िंदगी से इतने त्रस्त हैं कि हम हँसना ही भूल गए हैं। वैसे बच्चे का जन्म होता है, तो वह रोते हुए ही धरती पर पदार्पण करता है और मरते समय भी उदासी उसे घेरे रहती है, लेकिन काका यानी काका हाथरसी इसके अपवाद थे। अंत समय में वे खुद तो नहीं हँसे, लेकिन उन्होंने लोगों को रोने नहीं दिया। आँसू आँख तक आए, पर जल्दी ही सूख भी गए। उस समय का माहौल ही ऐसा था। एक ओर काका शारीरिक रूप से हमसे दूर जा रहे थे, दूसरी तरफ़ उनकी बातें हमारे मन में दस्तक दे रही थीं और कह रही थीं कि हमें रोना नहीं है, नहीं तो काका की आत्मा कष्ट पाएगी। हम चल रहे थे, काका की अंतिम यात्रा के साथ-साथ और साथ में थे हज़ारों लोग, जो काका को बहुत प्यार करते थे। कहीं ढोल बज रहे थे, कहीं भजन गाए जा रहे थे, तो कहीं गर्मी से बेहाल लोगों को शर्बत पिलाया जा रहा था। कोई केले की माला, कोई मखाने की तो कोई इमरतियों की माला काका को पहनाकर आत्मतोष का अनुभव कर रहा था। ये दृश्य था काका की अंतिम यात्रा का। ऐसी विशिष्ट अंतिम यात्रा कभी न तो किसी ने देखी, न सुनी और न कभी कहीं देखने को मिलेगी ही।

विषमताओं में जीने वाले काका को हमने कभी उदास नहीं देखा। वे गंभीर तो रहते थे, लेकिन उदास नहीं। रोनी सूरत उन्हें बिल्कुल पसंद नहीं थी। रोते बच्चे को देखकर उनका मन पीड़ित हो जाता था। काका को देखकर बच्चे रोना भूल जाते थे और गोद का स्पर्श पाकर मुस्कुराने लगते थे। मुझे याद है जब मेरे छोटे बहिन-भाई या भतीजे-भतीजी कभी रोते थे तो काका ऊपर अपने कमरे से ही कहते थे–'क्यों रो रहे हैं, इन्हें चुप कराओ।' काका किसी के आँसू और किसी की उदासी को बर्दाश्त ही नहीं कर पाते थे। उन्होंने बचपन से लेकर जीवन-भर संघर्ष ही किया। जब वह पंद्रह दिनों के थे, तभी पिता का प्यार ईश्वर ने उनसे छीन लिया था। शायद इसीलिए उन्होंने अपने जीवन से आँसुओं को और उदासी को सदा-सदा के लिए निकाल दिया था। काका ने सदा हँसी-खुशी बाँटी, जिससे उन्हें अपने संघर्षों की याद ही न आए।

काका का जीवन हास्य का पर्याय था। जैसा मैंने पहले भी कहा है कि काका का बचपन संघर्षों और विसंगतियों की गाथा रहा है, लेकिन उन्होंने इसका आभास हमें कभी रंचमात्र भी न होने दिया। जब हम समझदार हो गए और हमारे अंदर इतनी समझ और हिम्मत आ गई कि हम काका से उनके बीते जीवन के बारे में कुछ पूछ सकें, तो हमने काका के जीवन की अनेक बातें उनसे पूछीं। काका ने उतनी ही आत्मीयता से हमें बचपन से लेकर अस्सी के बाद तक के जीवन की बहुत सारी बातें बताईं। कुछ घटनाएँ तो हमने प्रत्यक्ष देखी हैं।

बात है सन् 1993-94 की, जब काका बिजनौर में दो वर्ष मेरे पास रहे। वे दो वर्ष मेरे जीवन के सबसे अनमोल दिन हैं, जिनकी सोंधी सुगंध आज भी मन को महका रही है। सितंबर के महीने में मैं हाथरस गई थी, मैंने कहा, 'काकू, कुछ दिनों के लिए बिजनौर चलिए।' काकू ने मेरी बात तुरंत मान ली और आ गए बिजनौर। बिजनौर की जलवायु ने काका का मन मोह लिया और उन्होंने घोषणा कर दी कि 'अब मैं स्थाई रूप से बिजनौर में ही रहूँगा, क्योंकि यहाँ की जलवायु मेरे स्वास्थ्य के लिए अनुकूल है–

सोचा परिवर्तन करें जीवन में कुछ और
छोड़ हाथरस आ गए काका कवि बिजनौर
काका कवि बिजनौर, बुढ़ापे की यह नैया
कर दे भव से पार, निकट हैं गंगा मैया
शुद्ध यहाँ जलवायु, मित्र-संबंधी प्यारे
दूर करें सब संकट प्रभु, गिरिराज हमारे

हमें लगा जैसे कोई वरदान मिल गया हो। हम खुश, हमारी दोनों बेटियाँ खुश और साहित्यप्रेमी भी खुश। बिजनौर जनपद तो जैसे आनंदविभोर हो गया था। काका से मिलने लोग आते और उनसे मिलकर काका भी आत्मविभोर हो जाते। लेकिन उन्होंने अनुशासन कभी नहीं तोड़ा। अनुशासन उनके जीवन का पर्याय था।

प्रात: पाँच बजे के बाद काका टहलने चले जाते थे और जब लौटकर आते तो थोड़ी देर हम बच्चों से बातें करते और बरसात के दिनों में जब आँगन में झूला पड़ा होता था, तो टहलकर आने के बाद वे दो-चार मिनट झूला झूलते थे। आठ बजे एक कप कॉफी के साथ दो टोस्ट, जिन पर नपा-तुला मक्खन वे स्वयं लगाते थे और थोड़े से भुने हुए नमकीन चने साथ में खाते थे। दोपहर साढ़े बारह बजे तक दोपहर का भोजन करते थे, यदि किसी कारण देर हो जाती तो भोजन करना कैंसिल कर देते। भोजन में भी अनुशासन था, दो रोटी ही खाते थे और यदि खाने के साथ उन्हें कुछ और दिया जाता, तो उसी अनुपात में रोटी कम कर देते थे। जैसे रोटी के समय यदि उन्हें एक लड्डू दे दिया जाता तो दो के स्थान पर एक रोटी खाते थे। शाम को चार बजे एक कप कॉफी और ज़रा से भुने चने। उसके बाद रात को आठ बजे रात का भोजन लेते थे। रात को 10 बजे सोते समय एक गिलास दूध पीते थे। कई बार हम पूछते, 'काका इतना कम क्यों खाते हैं?' वे उत्तर देते 'मुझे बहुत समय तक ज़िंदा रहना है इसलिए भरपेट नहीं खाता, थोड़ा भूखा भी रहता हूँ।' वे कहा करते थे, 'आज तक ऐसा कोई नहीं है, जो कम खाकर मर गया हो। हाँ, ज़्यादा खाने वाले जल्दी मरते हैं।' एक बार एक परिचित हमारे घर पर आए, आयु में काका से छोटे थे। बातों ही बातों में उन्होंने बताया कि वे सुबह के नाश्ते में दो या तीन भरवाँ परांठे खाते हैं और साथ में नमकीन आदि। काका ने उनसे कुछ नहीं कहा, लेकिन उनके जाने के बाद बोले, 'लल्ली (ब्रज में प्यार से बेटी को लल्ली कहते हैं) देख लेना, ये अधिक दिनों तक स्वस्थ नहीं रहेंगे और वास्तव में आयु में काका से छोटे होने पर भी वे इस संसार को छोड़कर काका से बहुत पहले ही चले गए। उस समय उनकी बातें हमारी समझ में नहीं आती थीं। आज जब मैं भी उम्र के उसी मोड़ की ओर बढ़ रही हूँ, तब सारी बातें समझ में तो आ रही हैं, लेकिन मन पर अनुशासन कमज़ोर पड़ जाता है।

काका समय के पाबंद थे। यदि किसी को उनसे मिलने आना है और वह समय से नहीं आया तो इसकी हानि आनेवाले को ही उठानी पड़ती थी। काका की दिनचर्या इतनी अनुशासित थी कि हम काका से बातें करने के समय का इंतज़ार करते रहते थे। हम या तो सुबह की कॉफ़ी के समय या शाम की कॉफ़ी के समय या फिर रात को सोते समय जब वे सेवक से पैर दबवाते थे, हम काका से बातें कर सकते थे और उनकी बातों से हमें सफल जीवन जीने के बहुत सारे टिप्स मिलते रहते थे। हमने उन पर कितना अमल किया, ये तो हमें नहीं पता, लेकिन कुछ तो सीखा ही।

काका बहुत हँसाते थे। मन से सरल थे, बच्चों की प्रतिभा को पहचानते थे। उन्हें आगे बढ़ाने में पूरी सहायता करते थे, उन्हें प्रोत्साहित भी करते थे। कक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने पर घर के हर बच्चे को पुरस्कृत भी करते थे, लेकिन उनके द्वारा बनाए गए अनुशासन में व्यवधान आने पर उन्हें दंडित भी करते थे। इसी संदर्भ में मुझे दीपावली के अवसर की एक घटना याद आ रही है। काका ने मना किया था कि घर के आँगन में पटाखे कोई नहीं छोड़ेगा, फुलझड़ी छोड़ सकते हैं। मेरे बड़े भाई ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और उन्होंने चकरी आँगन में चला दी। चकरी आँगन में इधर-से-उधर तेज़ी से घूम रही थी, डर लग रहा था कि कहीं कोई दुर्घटना न घट जाए। काका, जिनको कभी हमने ग़ुस्से में नहीं देखा था, वे बेंत लेकर आए और बेंत से भाई की जो पिटाई की, उसे मैं कभी भूल ही नहीं सकती। वह दृश्य तो आज भी चलचित्र की भाँति मेरी आँखों के सामने घूम जाता है और आज भी सिहरन होने लगती है।

काका के व्यक्तित्व का एक और अनोखा पक्ष है कि वे सेवकों के प्रति सदैव उदार रहते थे और कहा करते थे कि वे भी हमारी तरह ही इंसान हैं। यहाँ तक कि हम बच्चे नौकरों से कभी ग़लत ढंग से बोल ही नहीं सकते थे, उनका अपमान करना तो बहुत दूर की बात थी। कुछ सेवक तो उनकी इस उदारता का फ़ायदा भी उठा लेते थे।

मन में यह बात भी आ सकती है कि काका अनुशासन में पक्के थे, तो कवि-सम्मेलनों में उनका अनुशासन कैसे क़ायम रहता था? वे सुबह-शाम के टहलने को कैसे बनाए रखते थे? रेलगाड़ी से यात्राएँ भी उन्हें बहुत करनी पड़ती थीं। पर वे टहलना नहीं छोड़ते थे। इसीलिए कई बार ऐसा भी हुआ कि अपना सामान स्टेशन पर या गाड़ी में छोड़कर वे टहलने निकल गए, प्लेटफ़ार्म पर ही। कई बार उनकी गाड़ी छूट गई और उन्हें और किसी अन्य माध्यम से अपने गंतव्य तक पहुँचना पड़ा।

काका की लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती रही। काका ने अनेक बार अपनी यात्राओं की घटनाएँ हमें सुनाईं। एक बार काका को गाडरवारा कवि-सम्मेलन में जाना था। ये नवंबर 1974 की बात है। वहाँ के लिए सीधी ट्रेन नहीं थी। अत: काका मध्यप्रदेश के मूँगावाली स्टेशन पर उतरे और वहाँ से गाडरवाला जाने के लिए उन्हें दूसरी ट्रेन लेनी थी। वहाँ के कॉलेज के एक सज्जन कुछ छात्रों के साथ स्टेशन पर आए और काका के पास आकर बोले, 'काका आज तो हमारे कॉलेज में

कविता पाठ करना होगा।' काका ने उन्हें समझाया कि हम गाडरवाला कवि-सम्मेलन की स्वीकृति दे चुके हैं। वहाँ हमें कविता सुनानी है। इतने में गाड़ी आ गई और छात्रों को पता चला कि काका भी इसी गाड़ी से जा रहे हैं, तो छात्रों ने कुली से सामान छीन लिया। गाड़ी ने सीटी दे दी। काका गाड़ी में चढ़ गए, छात्र भी गाड़ी में चढ़ गए और उन्होंने चेन खींचकर गाड़ी रोक दी। 30-40 छात्र गाड़ी के सामने खड़े होकर नारे लगाने लगे। 'काका हाथरसी नीचे उतरो, गाड़ी नहीं जाने देंगे। टी०टी०, ड्राइवर, स्टेशन मास्टर सभी काका से कहने लगे, इनकी बात मान लो, अन्यथा ये बच्चे गाड़ी को नहीं जाने देंगे। काका ने छात्रों से और उनके साथ आए संयोजक महोदय से कहा कि आज हमें जाने दीजिए। परसों आकर हम कॉलेज में कविता ज़रूर सुनाएँगे, उस दिन कवि-गोष्ठी रख लीजिए। काका की बात मान ली गई। छात्र नाचने लगे और स्टेशन 'काका हाथरसी ज़िंदाबाद' के नारों से गूँज उठा।

काका की लोकप्रियता की ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, लेकिन यह घटना अति विशिष्ट है, जिसे हम काका से बार-बार सुना करते थे और हमारा बाल-मन काका से अनेक सवाल भी करता था। हुआ यह कि काका ग्वालियर एक कवि-सम्मेलन में गए थे। कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर एक रौबदार क़िस्म का व्यक्ति काका के पास आया, उसके पास पिस्तौल भी थी। उसने काका से कहा, 'काका, अब यहाँ का कवि-सम्मेलन तो हो गया, अब आप हमारे साथ हमारे गाँव चलिए, आपको सुबह यहीं छोड़ जाएँगे।' काका ने उन महाशय से कहा, 'अब हमें नींद आ रही है, हम सोएँगे।' यह वार्तालाप एक साथी कवि भी सुन रहा था। उसने काका को एक तरफ़ ले जाकर समझाया कि वह व्यक्ति डाकुओं का सरदार है, यदि इसकी बात नहीं मनोगे तो परिणाम बहुत बुरा होगा। साथी कवि की बात काका की समझ में आ गई। तीन-चार अन्य कवियों को लेकर काका उस व्यक्ति के साथ जाने के लिए गाड़ी में बैठ गए। वह व्यक्ति किसी नहर के किनारे-किनारे सभी कवियों को ले जा रहा था। एक कवि ने काका से कहा, 'काका, हम डाकुओं के गाँव जा रहे हैं, उन्हें कविता सुनाने के लिए।' काका डर गए। यह बात डाकुओं के सरदार को पता चल गई। उसने कहा, 'डरिए मत काका, मैं आज डाकुओं से आपके पैर पुजवाऊँगा।' काका ने उससे कहा 'मुझे नहीं जाना है, मुझे ग्वालियर छोड़ आइए। मैं कविता नहीं सुना पाऊँगा।' इतना सुनकर डाकू ने पिस्तौल दिखाकर कहा, 'इसे देख रहे हो, चुपचाप चले चलो।' उसकी बात सुनकर काका शांत हो गए और पहुँच गए डाकुओं के गाँव में और जब वह व्यक्ति कविता सुनकर काका को वापिस ग्वालियर छोड़ने आया तो उनके ठहरने की व्यवस्था भी उसी ने की और काका को चालीस रुपए भी दिए। काका बताते थे, 'बेटी, उस समय वो चालीस रुपए मुझे चार हज़ार के समान लगे और उस दिन मैंने प्रभु से कहा ख़ूब बचाया आपने अपने प्रभू को।'

काका की लोकप्रियता अपने देश में तो थी ही। देश की सीमाओं को लाँघकर विदेशों में भी पहुँच गई थी, जिसके परिणामस्वरूप काका ने अनेक विदेश-यात्राएँ कीं और विदेश में जाकर प्रवासी भारतवासियों को ख़ूब हँसाया और गुदगुदाया भी।

काका की लोकप्रियता का एक विशेष कारण यह भी रहा कि उन्होंने सत्य और यथार्थ को हास्य के माध्यम से व्यक्त किया, जिससे उस सत्य को हम आसानी से और बेझिझक स्वीकार कर लें। काका की बर्थ कंट्रोल, लिंगभेद, नाम बड़े और दर्शन छोटे, भगवान को ज्ञापन आदि ऐसी अनेक कविताएँ हैं, जिनमें हम यथार्थ के दर्शन करते हैं और हँस-हँसकर करते हैं।

18 सितंबर को उनकी 104 वीं वर्षगाँठ पर और 15वीं पुण्यतिथि पर हमारा शत-शत नमन। आज काका दैहिक रूप से हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन हमारी कामना है कि हमें काका का आशीर्वाद मिलता रहे और सदैव हम उनके द्वारा दिखाए गए कर्म-पथ पर पूरी ईमानदारी, पूरी सच्चाई, पूरी निष्ठा और दृढ़ अनुशासन से निरंतर आगे बढ़ते रहें, आगे ही बढ़ते रहें।

जीवन के अंतिम दो वर्षों में काका मेरे पास मेरे परिवार के साथ रहे। उनका भरपूर आशीर्वाद मेरे परिवार को मिला। वे दो वर्ष मेरे जीवन के विशिष्ट पल थे, जिन्हें मैं कभी नहीं भूल सकती। उन पलों की महक सदैव हमारे मनों को महकाती रहेगी। एकांत क्षणों में उनकी अनुपस्थिति भी आज उपस्थिति लगती है और आज हम उनके द्वारा बताए गए मार्ग पर चलने का प्रयास कर रहे हैं। कोशिश यही है कि हम उनके उसूलों पर खरे उतरें।

❐ 16, **साहित्य विहार**
बिजनौर (उ०प्र०)
मो० 09319441818

डॉ० मीना अग्रवाल
का नया काव्य-संग्रह
यादें बोलती हैं
मूल्य : 150 रुपए

प्रकाशक :
हिंदी साहित्य निकेतन
बिजनौर (उ०प्र०)

जीने और जूझने का हौसला देती ग़ज़लें

डॉ॰ वेदप्रकाश अमिताभ

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल के नए ग़ज़ल-संग्रह 'आदमी है कहाँ' का एक शेर उनकी अंतर्दृष्टि और संग्रह के समग्र विज़न की व्यंजना करने में सक्षम है। श्री अग्रवाल के अनुसार–

यह घटा, गहरा अँधेरा,
इससे घबराते हो क्यों?
जुगनुओं से काम लो,
घर के दिए से काम लो

अपनी 'आदमी की खोज और मेरी ग़ज़ल' शीर्षक भूमिका में रचनाकार ने 'जिस आशा का दामन थामने और उसी के सहारे आगे बढ़ने' के निश्चय का उल्लेख किया है, वह इस शेर और अन्य तमाम शेरों में अँधेरे और रोशनी से जुड़े बिंबों के माध्यम से व्यंजित हुआ है। उसे मालूम है कि जीवन में 'सच' दोनों हैं, अँधेरा भी और उजाला भी 'रात का अँधियार सच तो दिन का मंज़र भी है सच।' लेकिन रचनाकार के विज़न में 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' की कौंध बहुत प्रत्यक्ष है। वह केवल अपने लिए या किसी एक के लिए उजाला नहीं चाहता। कई शेरों में 'सर्वे भवंतु सुखिनः' की ध्वनि भी बहुत मुखर है–

न घर में किसी के अँधेरा रहे,
ये जज़्बा ख़यालों में जब-तब रहा।

इसी तरह का जज़्बा 'अपने दीपक को सीमित न कर', 'चिराग़ों को हर घर में रोशन करो' आदि उद्‌गारों में भी है। लेकिन रोशनी चाहे उम्मीदों की हो या प्यार-विश्वास की या सुख-शांति की, उधार नहीं ली जा सकती, न ख़रीदी जा सकती है, इसलिए कई शेरों में 'अप्प दीपो भव' की चेतना भी केंद्रस्थ है–

हमने पत्थर के भीतर से खोजी चमक,
हमने ढूँढा तो हमसे उजाला हुआ।

सिर्फ़ बाहर के दीपक ही काफ़ी नहीं,
अपने भीतर भी तो रोशनी खोजिए।

रचनाकार को विश्वास है कि इंसान चाहेगा तो अपने हिस्से की रोशनी जुटा लेगा, क्योंकि 'शक्तिशाली देवता के बाद है तो आदमी।' बस, उसे पर्वतों को काटकर रस्ता बनाना सीखना होगा, कठिनाइयों से पार जाना सीखना होगा। मनुष्य में अपार शक्ति है, असीम संभावनाएँ हैं। रचनाकार आश्वस्त है– 'मानव नहीं होता, तो खुदा भी नहीं होता।' ऐसा मनुष्य चाहेगा तो कुरूपताएँ क्यों नहीं नष्ट होंगी, उच्चतर दिशा में आशानुरूप बदलाव क्यों नहीं होगा? इसीलिए कई ग़ज़लों में 'दुख की पिछली रजनी बीच/ बिहँसता सुख का नवल प्रभात' या 'रात जितनी ही संगीन होगी/ सुबह उतनी ही रंगीन होगी' सरीखा आशावाद जगमगाता है–

दोस्त, यह पतझर का मौसम सामयिक है, जाएगा
हर बसंती रुत का अब जा-जाके लौट आना समझ

जब तक 'वसंती रुत' लौटती नहीं है, तब तक उसके लौटने और बदलाव होने का सपना देखने में कोई हर्ज़ नहीं है। श्री अग्रवाल मानते हैं कि मिल-जुलकर बैठने और सपना देखते रहने से एक दिन मुश्किलें आसान हो जाएँगी। इस संदर्भ में 'आओ कुछ देर हम मिल-जुल के भी बैठें तो सही' और 'इक ना इक सपना कभी आप भी देखें तो सही' जैसे उद्‌गार पठनीय हैं।

श्री अग्रवाल ने बहुत सहज भाषा में अपनी मनुष्यता की पक्षधर अंतर्दृष्टि को व्यक्त किया है। परिचित प्रतीकों और संप्रेक्षण-सक्षम बिंबों से उनका सोच बहुत प्रभावशाली बनकर उभरा है। 'सूरज', 'चाँद', 'गागर', 'पौधा, 'दरिया', 'चट्टान', 'पतझर', 'दीपक', 'खिड़की' आदि की उपस्थिति में रचनाकार का अभिप्राय अपनी विभिन्न अर्थच्छटाओं के साथ व्यंजित हुआ है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

एक मुद्‌दत हो गई दरिया में सन्नाटा-सा है,
छेड़कर हर लहर को तूफ़ान करते जाइए।

बंद करके कमरे को, चाह है उजाले की,
खिड़कियाँ जो खोलोगे, रोशनी भी आएगी।

तू जो प्यासा है तो पानी की तरफ़ हाथ बढ़ा,
चल के तुझ तक तो यह गागर नहीं आने वाली।

आज के अँधेरे आदमख़ोर और अमानुषिक समय में ये ग़ज़लें निश्चय ही जीने का हौसला देती हैं और कहीं सूरज, कहीं दीपक और कहीं जुगनुओं की तरह अपनी सार्थक भूमिकाएँ निभाती हैं।

आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह); डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल; हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰); 2010; 150 रुपए।

❐ **डी**-131 **रमेश विहार**
अलीगढ़ 2020991 **(उ॰प्र॰)**

दर्द जोगिया ठहर गया : आहत संवेदना का काव्य

श्रीकृष्ण शर्मा

'दर्द जोगिया ठहर गया' मधुकर जी का नवीनतम नवगीत-संग्रह है। मैं निस्संकोच कह सकता हूँ कि वे अपने व्यक्तिगत व्यवहार में जितने सहज, सरल, आत्मीय और विनम्र हैं, अपने रचना-कर्म में उतने ही तल्ख़ और आक्रामक हैं। इसका कारण यह है कि समकालीन जीवन में व्याप्त विषमताओं, विडंबनाओं और विरूपताओं को वे नज़रअंदाज़ नहीं कर पाते।

स्वार्थी, अवसरवादी, भ्रष्ट और सत्तालोलुप नेता पूँजीपतियों एवं अपराधियों से साठ-गाँठ कर हर तरह से जनता को लूटने में लगे हैं—रखवालों ने लूट मचाई/कभी अगाड़ी, कभी पिछाड़ी।

वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में किताबों के बोझ-तले दबे बच्चे का दर्द भी उनकी आँखों से बच नहीं पाया है— धूप में बस्ता उठाए हाँफता बच्चा/तोतली भोली निगाहें, लापता बच्चा।

इसी प्रकार आतंकवादी गतिविधियों के सिलसिले में, जिनसे जन-जन त्रस्त, भीत और आशंकित है, वे कहते हैं— पग-पग फिदायीन हैं/बारूदी सुरंग का जाल/ क्या जाने किसके सिर/क्रूर काल चढ़ जाएगा।

किंतु मधुकर अष्ठाना इस दुर्दम्य चक्रव्यूह में खोकर नहीं रह जाते, अपितु उनका परिवर्तनकामी आक्रोश यह कहने के लिए विवश हो उठता है कि— संधियों के गीत गाए/रोज़ समझौते रचाए/पर दुशासन ने कपट के/ नित्य लाक्षागृह बनाए/ अब महाभारत छिड़े तो/पांडवों का दोष क्या है?

मधुकर अष्ठाना का अनुभव-क्षेत्र विशाल है। उन्होंने जीवन में जिन बातों को महसूस किया है, उनकी अभिव्यक्ति इन नवगीतों में है। समकालीन मानवीय सरोकारों से जुड़ी त्रासद स्थितियों के एक-से-एक गहरे और प्रामाणिक रंग इनमें बिखरे पड़े हैं। इसीलिए ये बेहद तीखे, पैने और खुरदुरे हैं, जो हमें भीतर तक केवल झकझोरते ही नहीं, चोटिल भी करते हैं। उनके कथ्य में वैविध्य और अर्थगांभीर्य है। अभिव्यक्ति प्राणवान और जीवंत है। बिंब, प्रतीक और मिथक स्वाभाविक और सटीक हैं। लोकजीवन और जातीय संस्कार इनकी अंत:शक्ति है। इनमें जीवन और जीवन-संघर्ष का यथार्थ चित्रण है, जो हमें प्रतिरोध और प्रतिकार की प्रेरणा देता है। अस्तु, 'दर्द जोगिया ठहर गया' के नवगीतों से गुज़रकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि 'ये आहत संवेदना का महाकाव्य है।'

दर्द जोगिया ठहर गया (नवगीत-संग्रह); मधुकर अष्ठाना; उत्तरायण प्रकाशन, एम॰ 168, आशियाना, लखनऊ (उ॰प्र॰); 2009; 250 रुपए; पृ॰ 128

❐ सुकरी चर्च के पास, जुन्नारदेव
ज़िला छिंदवाड़ा (म॰प्र॰)

फिजी में प्रवासी भारतीय

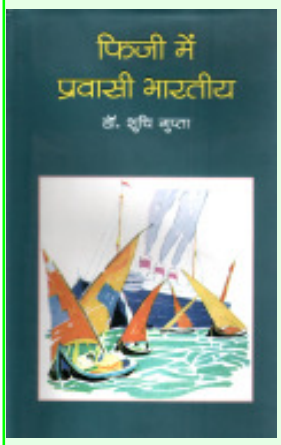

प्रस्तुत ग्रंथ रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली द्वारा पीएच॰डी॰ उपाधि हेतु स्वीकृत शोध-ग्रंथ पर आधारित है। इसमें फिजी के लिए शर्तबंद प्रथा के अंतर्गत भारतीयों के उत्प्रवास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है। भर्ती-व्यवस्था से लेकर वापसी-यात्रा तक भोले-भाले भारतीयों के साथ गोरे उपनिवेशियों द्वारा किए गए अत्याचार की यह एक लंबी गाथा है। प्रमुख रूप से भारतीयों की नैतिक व सामाजिक दशा पर अधिक प्रकाश डाला गया है, ताकि औपनिवेशिक शोषण को समुचित तरीक़े से देखा जा सके। उपलब्ध मौलिक व प्रकाशित सामग्री से स्पष्ट हो गया है कि कुशल भारतीय काश्तकारों के निपुण परिश्रम के परिणामस्वरूप ही फिजी सहित विभिन्न उपनिवेशों के अस्तित्व को मिटने से बचाया जा सका। लेकिन इन परोपकारी भारतीयों को 'कुली' का केवल संबोधन ही नहीं दिया गया, बल्कि उनके प्रति अर्धदास जैसा कठोर व्यवहार भी किया गया। जागीरी-व्यवस्था के कारण भारतीय स्त्रियाँ तो ख़रीद-फ़रोख़्त की वस्तु बनकर रह गईं, जबकि जागीरों पर अँग्रेज़ अधिकारियों ने उनको काम-पिपासा का साधन-मात्र माना। वस्तुत: वे भारत को कुलियों व वेश्याओं का देश समझते थे। घृणित प्रतिज्ञाबद्ध कुली-प्रथा को कार्यरूप देने का मुख्य दायित्व ब्रिटिश इम्पीरियल सरकार का था, जिसने औपनिवेशिक स्वार्थहित को पूरा करने के लिए अपने उपनिवेशों में स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके नीग्रो दासों के स्थान पर भारतवंशियों को यूरोपीय लोगों के बाग़ानों में काम पर लगा दिया। जिस दासता को समाप्त करके ब्रिटिश ह्विग सरकार ने विश्व-इतिहास में ख्याति अर्जित की, उसी सरकार ने दासता को बदले रूप में जन्म दिया। ऐसे सिस्टम की कठोरतम आलोचना इस अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष है।

फिजी में प्रवासी भारतीय (ऐतिहासिक विवरण); डॉ॰ शुचि गुप्ता; हिंदी साहित्य निकेतन, 16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ॰प्र॰); 2010; 300 रुपए; पृ॰ 212

डॉ॰ नागेश को प्रभा स्मृति बालसाहित्य सम्मान

स्थानीय श्री गांधी पुस्तकालय द्वारा प्रभा स्मृति प्रथम बालसाहित्य सम्मान सुप्रसिद्ध बाल-साहित्यकार डॉ॰ नागेश पांडेय 'संजय' को प्रदान किया गया। सम्मान-समारोह की अध्यक्षता उ॰प्र॰ हिंदी संस्थान के पूर्व निदेशक विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद' ने की। विशिष्ट अतिथि थे वरिष्ठ बाल-साहित्यकार डॉ॰ चक्रधर 'नलिन' (लखनऊ)। सम्मानस्वरूप डॉ॰ नागेश को प्रशस्ति पत्र, प्रतीक चिह्न, अंगवस्त्र, सरस्वती प्रतिमा और 2100 रुपए की धनराशि भेंट की गई।

प्रभा स्मृति बालसाहित्य पुरस्कार हेतु प्रविष्टियाँ आमंत्रित

बालसाहित्यकारों से उक्त पुरस्कार हेतु वर्ष 2000 से 2009 तक प्रकाशित बालसाहित्य की समस्त विधाओं की पुस्तकें सचित्र परिचय सहित 30 सितंबर 2010 तक आमंत्रित हैं। अजय गुप्त, सचिव, संयोजक, प्रभा स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार, श्री गांधी पुस्तकालय, चौक शाहजहाँपुर 242001 (उ॰प्र॰)

तीन साहित्यिक कृतियों का लोकार्पण

प्रसिद्ध शायर कृष्णकुमार 'नाज़' के ग़ज़ल-संग्रह 'गुनगुनी धूप' एवं नाटकसंग्रह 'जीवन के परिदृश्य' और कवि डॉ॰ मेघसिंह बादल के काव्य-संग्रह 'दर्पण' का विमोचन साहित्यिक संस्था 'अक्षरा' एवं 'अभिव्यक्ति काव्यचर्या' सहित 8 संस्थाओं के तत्त्वावधान में संपन्न हुआ। पुस्तकों का विमोचन कार्यक्रम अध्यक्ष श्री रमाशंकर सिंह सहित मुख्य अतिथि श्री डॉ॰ रामानंद शर्मा, अतिथि साहित्यकार श्री दीक्षित दनकौरी (दिल्ली)द्वारा किया गया। कार्यक्रम का संचालन योगेंद्र वर्मा 'व्योम' ने किया।

'अष्टम शैलीकार सम्मान' पद्मश्री डॉ॰ आलोक मेहता को

प्रख्यात साहित्यकार, पत्रकार एवं महान स्वतंत्रता संग्राम सेनानी पद्मश्री डॉ॰ कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का साहित्य देश की अमूल्य निधि है। प्रभाकर जी ने पत्रकारिता की जो अखंड ज्योति प्रज्वलित की थी, उसे आज जारी रखने की आवश्यकता है।

महामहिम राज्यपाल बुधवार सायं सहारनपुर में, पोस्ट ऑफ़िस रोड स्थित पंजाब सभागार में आयोजित 'अष्टम शैलीकार सम्मान समारोह' को मुख्य अतिथि पद से संबोधित कर रहे थे। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि महात्मा गांधी ने प्रभाकर जी को

देश की राजनीति में आने की प्रेरणा दी, किंतु प्रभाकर जी ने राजनीति छोड़कर साहित्य और पत्रकारिता को अपनाकर समाज को जाग्रत करने का काम किया। महामहिम ने कहा कि प्रभाकर जी जैसे मिशनरी पत्रकारों ने जिन मूल्यों को नए आयाम दिए, समाज और व्यक्ति ने उन्हें विकसित और प्रतिष्ठित करने का काम पद्मश्री डॉ॰ आलोक मेहता ने किया है।

समारोह को संबोधित करते हुए डॉ॰ निशंक ने कहा कि पत्रकारिता, समाज व व्यवस्था के बीच सेतु का काम करती है। समाज और जनतंत्र में राष्ट्र को समोन्नत करने के लिए यह आवश्यक है कि केवल पत्रकारिता का चौथा स्तंभ ही नहीं, बल्कि तीनों स्तंभ भी सुधार और संकल्प की ओर अग्रसर हों।

'शैलीकार प्रभाकर सम्मान' से सम्मानित, देश के डॉ॰ आलोक मेहता ने कहा कि मुझे उस आशीर्वाद की आवश्यकता है कि जिससे गाँव से लेकर राष्ट्रपति भवन तक हमारे अख़बारों की गूँज समाज और नई पीढ़ी को आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करें। डॉ॰ मेहता ने कहा कि सच्चा पत्रकार चुनौतियों का मुक़ाबला करते हुए सच्चाई को उजागर करने का काम करता है। पत्रकारिता को व्यवसाय की जगह मिशन के रूप में ही देखा जाना चाहिए।

मधुरेश, ज्योतिष जोशी और डॉ॰ शोभाकांत झा सम्मानित

प्रमोद वर्मा स्मृति संस्थान द्वारा हिंदी-आलोचना में उल्लेखनीय योगदान के लिए 2010 का 'प्रमोद वर्मा सम्मान' प्रतिष्ठित कथा-आलोचक मधुरेश और युवा आलोचक ज्योतिष जोशी को प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त 'प्रमोद वर्मा रचना सम्मान' से वरिष्ठ ललित निबंधकार डॉ॰ शोभाकांत झा को अलंकृत किया गया तथा वाणी परमार को एक वर्ष की शोध वृत्ति प्रदान की गई।

बरेली निवासी मधुरेश वरिष्ठ और पूर्णकालिक कथा-आलोचक हैं। डॉ॰ ज्योतिष जोशी साहित्य, कला, संस्कृति और आलोचना के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

षष्टिपूर्ति एवं लोकार्पण समारोह

सुप्रसिद्ध हिंदी-ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी के जीवन के साठ वर्ष पूरे होने पर जनवादी लेखक संघ की ग्वालियर इकाई एवं षष्ठिपूर्ति समारोह समिति द्वारा एक ऐतिहासिक समारोह का आयोजन किया गया, जिसमें शहर एवं देश-भर से आए लेखकों, कवियों एवं संस्कृतिकर्मियों ने भाग लिया। इस अवसर पर ज़हीर कुरैशी के रचनाकर्म पर केंद्रित समीक्षा की एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'ज़हीर कुरैशी : महत्त्व और मूल्यांकन' का लोकार्पण समारोह के मुख्य अतिथि ख्यातिलब्ध गीतकार व आलोचक नचिकेता ने किया। इस किताब के संपादक डॉ॰ विनय मिश्र ने ज़हीर कुरैशी की ग़ज़ल-यात्रा व सृजनधर्म पर विस्तार से चर्चा करते हुए कहा कि उनकी शायरी सच्चे अर्थों में जीवन की कविता है। ख्यातिलब्ध ग़ज़लगो व कथाकार ज्ञानप्रकाश विवेक ने अपने वक्तव्य में कहा कि ज़हीर की ग़ज़लों की ताक़त उनकी ज़िद है और इसी में उनकी अभिव्यक्ति का मर्म छुपा हुआ है। मुख्य अतिथि नचिकेता ने उन्हें किसान चेतना का एक महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकार मानते हुए कहा कि ज़हीर की ग़ज़लें जनता से सीधा संवाद करती हैं। इस लोकार्पण सत्र की अध्यक्षता प्रकाश दीक्षित, संचालन रामप्रकाश त्रिपाठी एवं धन्यवाद-ज्ञापन अतुल अजनबी ने किया।

'आदमी है कहाँ' ग़ज़ल पुस्तक पर समीक्षा-गोष्ठी

मुंगेर (बिहार) विकास भवन में समकालीन साहित्य मंच के बैनर तले डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़ल पुस्तक 'आदमी है कहाँ' पर विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी की अध्यक्षता मीना लाल ने की। संचालन अनिरुद्ध सिन्हा ने किया। सर्वप्रथम युवा ग़ज़लकार दीपक कुमार ने पुस्तक की दस ग़ज़लों का पाठ किया। तत्पश्चात् विमर्श का दौर आरंभ हुआ। अनिरुद्ध सिन्हा ने पुस्तक की ग़ज़लों पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि डॉ॰ अग्रवाल की ग़ज़लों की नाज़ुकी हमें पठनीयता की परिधि तक खींच लाती है। ऐसा इसलिए संभव हो पाया है कि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल की ग़ज़लों का संसार हमारा अपना संसार है। हर ग़ज़ल में हम अपना चेहरा देखते हैं। साथ ही ग़ज़लों की यह भी विशेषता है कि वे विद्रोह के फ़ैशनपरस्तों और जुमलेबाज़ों के तमगे से अलग खड़ी दिखाई पड़ती हैं।

ग़ज़लकार अशोक आलोक ने कहा कि चाँद जब खिड़की से होकर बिस्तर पर आता है तो ग़ज़ल होती है। ग़ज़ल का मिजाज़ हमारी अवस्थाओं से बनता है। 'आदमी है कहाँ' की ग़ज़लों का मिजाज़ भी इन्हीं अवस्थाओं से मिलता-जुलता है। वहीं विकास ने अपने उद्‌गार प्रकट करते हुए कहा कि डॉ॰ अग्रवाल की ग़ज़लें हमें संवेदनात्मक सुख देकर सोचने के लिए विवश करती हैं कि हम कहाँ थे और कहाँ आ गए हैं। संवेदना की कसौटी पर से जीवन लगातार बाहर होता चला जा रहा है।

अध्यक्षीय संबोधन में मीना लाल ने कहा कि डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल एक वरिष्ठ ग़ज़लकार हैं। उनकी ग़ज़लों ने हिंदी-ग़ज़ल को एक नई ऊँचाई दी है। उनकी ग़ज़लों से आने वाली पीढ़ी को काफ़ी लाभ होगा। राहुल, धीरज, रविकुमार सजल आदि ने भी अपने विचार व्यक्त किए। धन्यवाद ज्ञापन विकास ने किया।

डॉ॰ अरुण को मैथिलीशरण गुप्त गरिमा पुरस्कार

3 अगस्त को राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त मैमोरियल ट्रस्ट द्वारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जयंती भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नई दिल्ली के आज़ाद भवन सभागार में डॉ॰ रत्नाकर पांडेय की अध्यक्षता में मनाई गई। मुख्य अतिथि थे केंद्रीय राज्यमंत्री श्री प्रदीपकुमार जैन। कार्यक्रम में इस वर्ष का 'राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त गरिमा पुरस्कार' डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण' को उनके खंडकाव्य 'वैदुष्यमणि विद्योत्तमा' के लिए दिया गया। ध्यातव्य है कि यह पुस्तक हिंदी साहित्य निकेतन, बिजनौर ने प्रकाशित की है।

ग़ज़ल दुष्यंत के बाद भाग-4 के लिए ग़ज़लें आमंत्रित

प्रख्यात ग़ज़लकार दीक्षित दनकौरी द्वारा संपादित ग़ज़ल-संकलन 'ग़ज़ल दुष्यंत के बाद' के तीन खंडों की लोकप्रियता को देखते हुए इसके चौथे खंड को प्रकाशित करने की योजना है। इसमें उन ग़ज़लकारों को सम्मिलित किया जाएगा, जिनकी ग़ज़लें पूर्व प्रकाशित तीनों खंडों में नहीं आ पाई हैं। इस खंड में प्रकाशनार्थ आपकी 8-10 पसंदीदा ग़ज़लें आमंत्रित हैं। ग़ज़लों के साथ संक्षिप्त परिचय, फ़ोटो निम्नलिखित पते पर भेज सकते हैं—श्री दीक्षित दनकौरी, 76 डी॰डी॰ए॰ फ्लैट्स, मानसरोवर पार्क, दिल्ली 110032, फ़ोन : 09899172697

सहयात्री पत्र-पत्रिकाएँ

अक्षरा (द्वैमासिक), संपादक : विजयकुमार देव; संपर्क : हिंदी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल 262002 (म.प्र.), शुल्क एक प्रति : 20 रुपए, वार्षिक : 80 रुपए।

अभिनव मीमांसा (अर्द्धवार्षिक), संपादक : विवेक पांडेय; संपर्क: 1/99 विजय खंड, गोमती नगर, लखनऊ 226010; एक प्रति : 25 रुपए, आजीवन : 3000 रुपए।

कथन (त्रैमासिक) संपादक : रमेश उपाध्याय; संपर्क : 107 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली; एक प्रति : 25 रुपए; वार्षिक : 100 रुपए

कथाबिंब (त्रैमासिक) संपादक : माधव सक्सेना अरविंद; संपर्क: ए-10, बसेरा, आफ़ दिन क्वारी रोड, देवनगर, मुंबई 400088; एक प्रति : 15 रुपए, वार्षिक : 50 रुपए।

कथा सागर (त्रैमासिक) संपादक : डॉ॰ तारिक असलम 'तस्नीम'; संपर्क : 6/2, हारून नगर कॉलोनी, फुलवारी शरीफ, पटना; एक प्रति : 15 रुपए; वार्षिक : 70 रुपए।

कनकप्रभा (मासिक) संपादक : डॉ॰ अरविन्द शर्मा'; संपर्क : ज्योतिष भवन, मंदिर चित्रगुप्त, बिजनौर (उ॰प्र॰); एक प्रति : 22 रुपए, वार्षिक : 250 रुपए।

कुरजाँ (द्वैमासिक) संपादक : डॉ॰ मनोहरलाल गोयल'; संपर्क : राजस्थानी साहित्य एवं संस्कृति परिषद, आर रोड, गोयल भवन, बिष्टुपुर, जमशेदपुर (झारखंड)

गुफ़्तगू (त्रैमासिक) संपादक : इम्तियाज़ अहमद ग़ाज़ी; संपर्क: 123ए/1, हरवारा, धूमनगंज, इलाहाबाद (उ॰प्र॰); एक प्रति : 10 रुपए; वार्षिक : 40 रुपए।

जगमग दीपज्योति (मासिक) संपादक : सुमतिकुमार जैन, संपर्क : महावीर मार्ग, अलवर (राज॰); एक प्रति : 20 रुपए, वार्षिक : 200 रुपए।

तटस्थ (त्रैमासिक) संपादक : डॉ॰ कृष्णबिहारी सहल; संपर्क : विवेकानंद विला, पुलिस लाइन के पीछे सीकर 332001 (राज॰); एक प्रति : 25 रुपए; वार्षिक : 100 रुपए

नव निकष (मासिक) संपादक : डॉ॰ लक्ष्मीकांत पांडेय; संपर्क : 6-7 जी, मानसरोवर कांप्लेक्स (गोपाल टाकीज), पी रोड, कानपुर (उ॰प्र॰); एक प्रति : 10 रुपए।

परिवेश (त्रैमासिक) संपादक : डॉ॰ मूलचंद्र गौतम; संपर्क : शक्तिनगर, चंदौसी (मुरादाबाद); एक प्रति : 20 रुपए; वार्षिक : 100 रुपए।

प्रतिश्रुति (त्रैमासिक) संपादक : मरुधर मृदुल; संपर्क : भारतीय विद्या भवन, सेंट्रल स्कूल स्कीम, एयरफोर्स एरिया, जोधपुर (राज॰)

प्रयास (त्रैमासिक) संपादक : अशोक अंजुम; संपर्क : ट्रक गेट, कासिमपुर (पावर हाउस), अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

प्रवासी संसार (त्रैमासिक), संपादक : राकेश पांडेय; संपर्क : 5/23 गीता कालोनी, दिल्ली-31; एक प्रति : 50 रुपए, वार्षिक : 200 रुपए।

प्रोत्साहन (त्रैमासिक) संपादक : जीवितराम सेतपाल; संपर्क : 205/31, बेसमेंट सिंधु शीव, पूर्व मुंबई-400022; एक प्रति 10 रुपए।

बालवाटिका (मासिक) संपादक : डॉ॰ भैरूंलाल गर्ग; संपर्क: नंद भवन, कावाँखेड़ा पार्क, भीलवाड़ा (राज॰); एक प्रति : 10 रुपए, वार्षिक : 100 रुपए।

मधुमती (मासिक) संपादक : डॉ॰ प्रमोद भट्ट; संपर्क : राजस्थान साहित्य अकादमी, सैक्टर 4, हिरणमगरी, उदयपुर 313002 (राज॰); एक प्रति 10 रुपए; वार्षिक : 100 रुपए।

मसि कागद (त्रैमासिक) संपादक : डॉ॰ श्यामसखा 'श्याम'; संपर्क : पलाश, 12 विकासनगर, रोहतक 124001 (हरियाणा); वार्षिक : 100 रुपए।

मेकलसुता (त्रैमासिक) संपादक : कृष्णस्वरूप शर्मा; संपर्क : शिवसंकल्प साहित्य परिषद्, आवासीय मंडल उपनिवेशिका, नर्मदापुरम् 461001; एक प्रति : 15 रुपए, वार्षिक: 60 रुपए।

युगीन काव्या (त्रैमासिक) संपादक : हस्तीमल हस्ती/ लक्ष्मण दुबे; संपर्क : 28 कालिका निवास, नेहरू रोड, सांताक्रुज (पूर्व), मुंबई 400055; वार्षिक : 50 रुपए।

वीणा (मासिक) संपादक : राजेंद्र मिश्र; संपर्क :11 रवींद्रनाथ टैगोर मार्ग, इंदौर (म॰प्र॰); एक प्रति : 15 रुपए, वार्षिक : 150 रुपए।

शब्द शिल्पियों के आस-पास (मासिक), संपादक : राजुरकर राज; संपर्क : एच. 3 उद्धवदास मेहता परिसर, नेहरूनगर भोपाल 462003 (म.प्र.); एक प्रति : 4 रुपए; वार्षिक : 40 रुपए।

संचेतना (त्रैमासिक) संपादक : महीप सिंह; संपर्क : एच-108, शिवाजी पार्क, पंजाबी बाग़, नई दिल्ली 110026; एक प्रति : 20 रुपए; वार्षिक : 75 रुपए

सनद (त्रैमासिक) संपादक : मंजु मल्लिक मनु; संपर्क : 4-बी, फ्रेंड्स अपार्टमेंट्स, मधु विहार, गुरुद्वारा के पास, पटपड़गंज, दिल्ली-110092; एक प्रति : 20 रुपए।

समरलोक (त्रैमासिक) संपादक : मेहरुन्निसा परवेज; संपर्क : डी-3/17, चार इमली, भोपाल 462016 (म॰प्र॰); एक प्रति : 20 रुपए; वार्षिक : 100 रुपए

समांतर (अनि॰) संपादक : डॉ॰ इसाक 'अश्क'; संपर्क : तराना, जि॰ उज्जैन (म॰प्र॰); एक प्रति सहयोगांश : 25 रुपए।

सहकार (त्रैमासिक) संपादक : भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'; संपर्क : हिंदी सहकार संस्थान, 362 सिविल लाइंस, उन्नाव (उ॰प्र॰); एक प्रति : 25 रुपए।

साहित्य अमृत (मासिक) संपादक : त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी; संपर्क : 4/19, आसफ़अली रोड, नई दिल्ली 110002; एक प्रति : 15 रुपए; वार्षिक : 150 रुपए।

साहित्य सागर (मासिक) संपादक : कमलकांत सक्सेना; संपर्क: 118 वैभव, सुरेंद्र प्लेस, होशंगाबाद मार्ग, भोपाल (म॰प्र॰); एक प्रति : 20 रुपए; वार्षिक : 250 रुपए।

हमारी धरती (त्रैमासिक) संपादक : सुबोध नंदन शर्मा; संपर्क: जी-4 नई कालोनी, कासिमपुर (पावर हाउस), अलीगढ़ (उ॰प्र॰)

हिन्दी साहित्य निकेतन

16 साहित्य विहार, बिजनौर (उ०प्र०)
फोन : 01342-263232, 09368141411

ई-मेल :
giriraj3100@rediffmail.com
giriraj@hindisahityaniketan.com
वेबसाइट :
www.hindisahityaniketan.com

महत्त्वपूर्ण कोश एवं संदर्भ ग्रंथ

निश्तर ख़ानक़ाही एवं डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल
ग़ज़ल और उसका व्याकरण 150.00

डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल एवं डॉ० मीना अग्रवाल
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-1 495.00
हिंदी साहित्यकार संदर्भ कोश : भाग-2 700.00
शोधसंदर्भ-भाग-1 500.00
शोधसंदर्भ-भाग-2 550.00
शोधसंदर्भ-भाग-3 525.00
शोधसंदर्भ-भाग-4 595.00
शोधसंदर्भ-भाग-5 895.00
तुकांत कोश 300.00

समीक्षा एवं समालोचना

डॉ० अंजु भटनागर
डॉ० कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रतीक विधान 500.00

डॉ० ज्योति सिंह
मृदुला गर्ग कृत अनित्य : इतिहास और आख्यान का संबंध 150.00
मृदुला गर्ग और नारी-अस्मिता का प्रश्न 300.00

डॉ० मिथिलेश माहेश्वरी
काका हाथरसी : एक समीक्षा-यात्रा 300.00

डॉ० मनोज कुमार
सांप्रदायिकता और हिंदी कथासाहित्य 250.00

डॉ० दीपा के०
अपनी कविताओं में अशोक चक्रधर 250.00

हिंदी का हास्य-व्यंग्य : विविध आयाम 250.00

डॉ० मीना अग्रवाल
आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य में संगीत (पुरस्कृत) 450.00

डॉ० हरीशकुमार सिंह
डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल : व्यक्ति और साहित्य 350.00
साठोत्तरी हिंदी-ग़ज़ल : डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल का योगदान/डॉ० अनिलकुमार शर्मा 350.00

डॉ० शंकर क्षेम
एक साक्षात्कार : पं० अमृतलाल नागर के साथ 150.00
ग़ज़ल : सौंदर्य और यथार्थ/अनिरुद्ध सिन्हा 150.00

डॉ० ज्योति व्यास
समय के हस्ताक्षर (हिंदी के आधुनिक कवि) 150.00

डॉ० लालबहादुर रावल
कालिदास के साहित्य में भौगोलिक तत्त्व 300.00

डॉ० अशोककुमार
जनपद बिजनौर के आधुनिककालीन साहित्यकार 350.00

डॉ० ओमदत्त आर्य
बिजनौर क्षेत्र की ग्रामोद्योग-संबंधी शब्दावली का अध्ययन 500.00
आस्थावाद एवं अन्य निबंध/डॉ० मिथिलेश दीक्षित 300.00
साहित्य और संस्कृति/डॉ० मिथिलेश दीक्षित 300.00
हास्य-निबंध : स्वतंत्रता के पश्चात्/डॉ० आशा रावत 350.00
आज़ादी के बाद का हिंदी गद्य व्यंग्य/डॉ० प्रेम जनमेजय 350.00
हिंदी बालकाव्य के विविध पक्ष/विनोदचंद्र पांडेय 300.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ॰ मीना अग्रवाल
वादविवाद प्रतियोगिता : पक्ष और विपक्ष 200.00
फिजी में प्रवासी भारतीय/डॉ॰ शुचि गुप्ता 300.00
मुक्तिबोध का रचना-संसार/डॉ॰ शिवशंकर लधवे 200.00

हास्य-व्यंग्य

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मेरी हास्य-व्यंग्य कविताएँ 150.00
मेरे इक्यावन व्यंग्य 300.00
चुनी हुई हास्य कविताएँ 250.00
मंचीय व्यंग्य एकांकी 200.00
बाबू झोलानाथ 60.00
राजनीति में गिरगिटवाद 100.00

महेशचंद्र द्विवेदी
भज्जी का जूता 150.00
क्लियर फंडा 120.00
प्रिय-अप्रिय प्रशासकीय प्रसंग 170.00

पं॰ सूर्यनारायण व्यास, सं॰ राजशेखर व्यास
वसीयतनामा 150.00

डॉ॰ सुरेश अवस्थी
नो टेंशन 170.00

काका हाथरसी
काका की विशिष्ट रचनाएँ 160.00
काका के व्यंग्य-बाण 60.00
कक्के के छक्के 160.00
लूटनीति मंथन करी 160.00
खिलखिलाहट 60.00

डॉ॰ आशा रावत
पैसे कहाँ से दें 200.00
चाहिए एक और भगतसिंह 100.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य उपन्यास) 100.00

महेश राजा
नमस्कार प्रजातंत्र 150.00

अशोक चक्रधर
ए जी सुनिए 100.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए 100.00
चुटपुटकुले 60.00
तमाशा 60.00
रंग जमा लो 65.00
सो तो है 60.00
हँसो और मर जाओ 60.00

डॉ॰ बलजीत सिंह
नमस्ते जी 150.00
अब हँसने की बारी है 200.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
1991 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 50.00
1992 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 50.00
1993 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 50.00
1994 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 60.00
1995 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 65.00
1996 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1997 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1998 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 100.00
1999 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 120.00
2002 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2003 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 150.00
2004 **की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य रचनाएँ** 170.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कहानियाँ 100.00
पिछले दशक की श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य कविताएँ 200.00
पिछले दशक के श्रेष्ठ हास्य-व्यंग्य एकांकी 100.00

डॉ॰ शिव शर्मा
शिवशर्मा के चुने हुए व्यंग्य 50.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास) 150.00
अपने-अपने भस्मासुर 150.00
उलटा-पुलटा/डॉ॰ राकेश शरद 60.00

मधुप पांडेय
हास्य-व्यंग्य : मधुप पांडेय के संग 160.00
धमकीबाज़ी के युग में/निश्तर ख़ानक़ाही 60.00
ला ख़र्चा निकाल/गजेंद्र तिवारी 200.00
जलनेवाले जला करें/गजेंद्र तिवारी 60.00

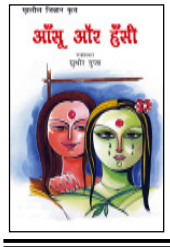

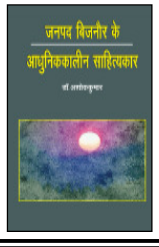

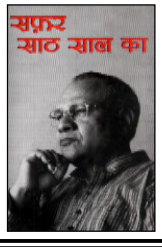

प्रतिनिधि व्यंग्य/दामोदरदत्त दीक्षित 100.00
सुरेंद्रमोहन मिश्र
कवयित्री सम्मेलन 100.00
सूर्यकुमार पांडेय
पेट में दाढ़ियाँ हैं 100.00
डॉ॰ हरीशकुमार सिंह
ये है इंडिया 120.00
आँखों देखा हाल 150.00
लिफ़्ट करा दे 200.00
देवेंद्र शर्मा
देवेंद्र के कार्टून 80.00
कार्टून कौतुक 120.00
डॉ॰ पिलकेंद्र अरोरा
लिफ़ाफ़े का अर्थशास्त्र 120.00

कहानी

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
जिज्ञासा और अन्य कहानियाँ 60.00
पच्चीस कहानियाँ 200.00
बाबूसिंह चौहान
कथा जारी है 150.00
सत्यराज
इक्कीस कहानियाँ 100.00
डॉ॰ मीना अग्रवाल
अंदर धूप बाहर धूप (नारी-मन की कहानियाँ) 150.00
डॉ॰ दिनेशचंद्र बलूनी
उत्तराखंड की लोकगाथाएँ 200.00
महेशचंद्र द्विवेदी
एक बौना मानव 100.00
लव जिहाद 200.00
रेणु 'राजवंशी' गुप्ता
कौन कितना निकट 120.00
लघु कथाएँ/ डॉ॰ हरिशरण वर्मा 150.00

उपन्यास

अनोखा उपहार/श्रीमती सुषमा अग्रवाल 200.00
आसरा/श्रीमती सुषमा अग्रवाल 100.00
तीन बीघा ज़मीन/श्रीमती सुषमा अग्रवाल 200.00
कालचक्र से परे/श्रीमती नीरजा द्विवेदी 200.00
और लहरें उफनती रहीं/डॉ॰ तारादत्त निर्विरोध 200.00
बजरंगा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ॰ शिव शर्मा 150.00
अराज-राज/डॉ॰ मोहन गुप्त 200.00
सुराज-राज/डॉ॰ मोहन गुप्त 350.00
एक गुमनाम फौजी की डायरी/डॉ॰ आशा रावत 150.00
एक चेहरे की कहानी/डॉ॰ आशा रावत 150.00
गुरुदक्षिणा (व्यंग्य-उपन्यास)/डॉ॰ आशा रावत 100.00

एकांकी-नाटक

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मंचीय व्यंग्य एकांकी 200.00
बच्चों के हास्य नाटक 150.00
बच्चों के रोचक नाटक 150.00
बच्चों के शिक्षाप्रद नाटक 150.00
बच्चों के अनुपम नाटक 180.00
बच्चों के उत्तम नाटक 180.00
भारतीय गौरव के बाल नाटक 180.00
प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित नाटक 175.00
ग्यारह नुक्कड़ नाटक 200.00
नीली आँखें 60.00
बाबूसिंह चौहान
संसार : एक नाट्यशाला 150.00
ग्यारह एकांकी/डॉ॰ हरिशरण वर्मा 200.00
दमन/रामाश्रय दीक्षित 100.00

ललित निबंध एवं रेखाचित्र

कैसे-कैसे लोग मिले/निश्तर ख़ानक़ाही 125.00
यादों का मधुबन/कृष्ण राघव 150.00
समय के चाक पर/डॉ॰ लालबहादुर रावल 125.00
समय एक नाटक/डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल 160.00
दर्पण झूठ बोलता है/बाबूसिंह चौहान 60.00
मकड़जाल में आदमी/बाबूसिंह चौहान 80.00

उफनती नदियों के सामने/बाबूसिंह चौहान 100.00
पीठ पर नील गगन/बाबूसिंह चौहान 100.00
इन दिनों समर में/डॉ॰ कृष्णकुमार रत्तू 250.00

गीत-ग़ज़ल

निश्तर ख़ानक़ाही
निश्तर ख़ानक़ाही समग्र (प्रकाशनाधीन) 500.00
मोम की बैसाखियाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 50.00
ग़ज़ल मैंने छेड़ी (ग़ज़ल-संग्रह) 80.00
ग़ज़लों के शहर में (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
मेरे लहू की आग (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00

डॉ॰ कुँअर बेचैन
कोई आवाज़ देता है 150.00
दिन दिवंगत हुए 150.00
कुँअर बेचैन के नवगीत 200.00
कुँअर बेचैन के प्रेमगीत 150.00
पर्स पर तितली (हाइकु) 200.00
हर आहट लगती पहचानी (हाइकु)/मिथिलेश दीक्षित 200.00

रमेश पोखरियाल 'निशंक'
मातृभूमि के लिए 200.00
संघर्ष जारी है 170.00
जीवन-पथ में 150.00
देश हम जलने न देंगे 150.00
तुम भी मेरे साथ चलो 150.00
शमा हर रंग में जलती है/रामेश्वरप्रसाद 150.00

डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
अक्षर हूँ मैं (कविताएँ) 150.00
सन्नाटे में गूँज (ग़ज़ल-संग्रह) 160.00
भीतर शोर बहुत है (ग़ज़ल-संग्रह) 160.00
मौसम बदल गया कितना (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
रोशनी बनकर जिओ (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
शिकायत न करो तुम (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
आदमी है कहाँ (ग़ज़ल-संग्रह) 200.00
सच सूली पर टँगने हैं/डॉ॰ अजय जनमेजय 80.00
तुम्हारे बाद (अनुपलब्ध)/डॉ॰ अजय जनमेजय 80.00
आदमी के हक़ में (ग़ज़लें)/डॉ॰ रामगोपाल भारतीय 100.00

यहाँ तक वहाँ से (कविताएँ)/रमेश कौशिक 200.00
हास्य नहीं व्यंग्य (कविताएँ)/रमेश कौशिक 150.00
गांधारी का सच (खंडकाव्य)/आर्यभूषण गर्ग 200.00

डॉ॰ आकुल
राधेय (खंडकाव्य) 120.00
असित चंद्र : अवदात चंद्रिका (काव्य-नाटक) 120.00
जिंदगी गाती तो है 120.00
आसमान मेरा भी है (ग़ज़ल-संग्रह)/किशनस्वरूप 100.00
बूँद-बूँद सागर मैं (ग़ज़ल-संग्रह)/किशनस्वरूप 100.00
पंथ के पाँवड़े (काव्य-संग्रह)/किशनस्वरूप 100.00

कर्नल तिलकराज
आँचल-आँचल खुशबू (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
ज़ख़्म खिलने को हैं (ग़ज़ल-संग्रह) 100.00
अग्निसुता/राजेंद्र शर्मा 150.00
सीतायनी/डॉ॰ शंकर क्षेम 150.00
हिरना लौट चलें (गीत-संग्रह)/शचींद्र भटनागर 150.00
तिराहे पर (ग़ज़ल-संग्रह)/शचींद्र भटनागर 150.00
ढाई आखर प्रेम के (गीत-संग्रह)/शचींद्र भटनागर 200.00
अखंडित अस्मिता (मुक्तक-संग्रह)/शचींद्र भटनागर 200.00
गुलमुहर की छाँव में (ग़ज़ल-संग्रह)/मनोज अबोध 100.00
स्नेहा/तारा प्रकाश 100.00
उजियारा आशाओं का/तारा प्रकाश 150.00
बुलंदी इरादों की/तारा प्रकाश 150.00
चलने से मंज़िल मिलती है/तारा प्रकाश 200.00
इंद्रधनुष/तारा प्रकाश 200.00
सुरों के ख़त/अश्विनीकुमार 'विष्णु' 100.00
सुनहरे मंत्र का जादू/अश्विनीकुमार 'विष्णु' 100.00
सुनाते हुए ऋतुगीत/अश्विनीकुमार 'विष्णु' 150.00

डॉ॰ मीना अग्रवाल
सफ़र में साथ-साथ (मुक्तक-संग्रह) 150.00
जो सच कहे (हाइकु-संग्रह) 150.00
यादें बोलती हैं (कविताएँ) 200.00
एक मुट्ठी धूप/नीरजा सिंह 100.00
कटे हाथों के हस्ताक्षर/डॉ॰ कमल मुसद्दी 150.00
फ़ासले मिट जाएँगे (ग़ज़लें)/डॉ॰ बलजीत सिंह 150.00

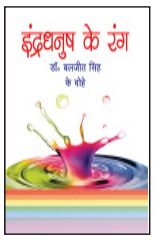

शब्द-शब्द संदेश (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ बलजीत सिंह 150.00
जीवन है मुस्कान (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ बलजीत सिंह 150.00
भीतर का संगीत (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ बलजीत सिंह 200.00
सुख के बिरवे रोप (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ बलजीत सिंह 200.00
इंद्रधनुष के रंग (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ बलजीत सिंह 200.00

डॉ॰ योगेंद्रनाथ शर्मा 'अरुण'
बहती नदी हो जाइए (ग़ज़ल-संग्रह) 150.00
जीवन-अमृत : पर्यावरण चेतना (दोहा-संग्रह) 200.00
अक्षर-अक्षर हो अमर (दोहा-संग्रह) 200.00
वैदुष्यमणि विद्योत्तमा (खंडकाव्य) 200.00
स्मृतियाँ/श्रीमती सुषमा अग्रवाल 100.00
अनजाने आकाश में/महेशचंद्र द्विवेदी 170.00
बातें कुछ अनकही/सत्येंद्र गुप्ता 200.00
मैंने देखा है/सत्येंद्र गुप्ता 200.00
हौसला तो है/सत्येंद्र गुप्ता 200.00
जज़्बात की धूप/धूप धौलपुरी 250.00
आड़ी-तिरछी यादों-सा कुछ/नवलकिशोर शर्मा 180.00
एड्स शतक/पूरणसिंह सैनी 150.00
खोजें जीवन सत्य (दोहा-संग्रह)/डॉ॰ ओमदत्त आर्य 150.00
राष्ट्र-शक्ति/सलेकचंद संगल 150.00
माँ तुझे प्रणाम/सलेकचंद संगल 150.00

आत्मकथा-संस्मरण

मेरा जीवन : ए-वन/काका हाथरसी 100.00
आत्मसरोवर/ओम्प्रकाश अग्रवाल 125.00
निष्ठा के शिखर-बिंदु/नीरजा द्विवेदी 200.00
डॉ॰ अजय जनमेजय (संपादक)
सफ़र साठ साल का 400.00
गीतिका गोयल, अनुभूति भटनागर (संपादक)
यादों की गुल्लक 300.00
आधी हक़ीक़त आधा फ़साना/डा॰ बलजीतसिंह 150.00

बाल-साहित्य

धरती पर चाँद (बालगीत)/शंभूनाथ तिवारी 150.00
हम बगिया के फूल (बालगीत)/डा॰ बलजीतसिंह 150.00
आओ गीत सुनाओ गीत (बालगीत)/डा॰ बलजीतसिंह 150.00
जादूगर बादल (बालगीत)/विनोद भृंग 150.00
आटे-बाटे दही चटाके (शिशुगीत)/बालकृष्ण गर्ग 150.00
चुनमुन की कहानियाँ (पुरस्कृत)/गीतिका गोयल 150.00
किशोर मन की कहानियाँ/डॉ॰ सरला अग्रवाल 150.00
डॉ॰ अजय जनमेजय
हरा समंदर गोपी चंदर (अनुपलब्ध) 150.00
अक्कड़-बक्कड़ हो हो हो (अनुपलब्ध) 100.00
नन्हे पंख ऊँची उड़ान (अनुपलब्ध) 150.00
डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मानव-विकास की कहानी 200.00
पार्टी गेम्स/चाँदनी कक्कड़ 125.00

विविध

उत्तराखंड में आध्यात्मिक पर्यटन/डॉ॰ सरिता शाह 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण, डॉ॰ मीना अग्रवाल
पर्यावरण : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 200.00
नारी : कल और आज 200.00
निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
विश्व आतंकवाद : क्यों और कैसे 125.00
हिंसा : कैसी-कैसी 200.00
दंगे : क्यों और कैसे (पुरस्कृत) 100.00
रमेशचंद्र दीक्षित, गिरिराज शाह, निश्तर ख़ानक़ाही, डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल
मानवाधिकार : दशा और दिशा (पुरस्कृत) 300.00
डॉ॰ गिरिराज शाह
अपराध-अपराधी : अन्वेषण एवं अभियोजन 200.00
गुरु नानकदेव/डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल 40.00
अमृतवाणी/डॉ॰ गिरिराजशरण अग्रवाल 60.00
वेद-वेदान्त दर्शन/डॉ॰ मूलचन्द दालभ 300.00
प्रकृति : एक ज्ञेय तत्त्व/डॉ॰ मूलचन्द दालभ 300.00
कन्हैया गीता/डॉ॰ मूलचन्द दालभ 900.00
मैं हरिद्वार बोल रहा हूँ/डॉ॰ कमलकांत बुधकर 395.00
डॉ॰ गोविंद शर्मा एवं रवि लंगर
टास्कफोर्स : हैल्थकेयर प्रोजेक्ट्स 450.00
सिद्धाश्रम का संन्यासी/मनोज भारद्वाज 150.00
समुद्री दैत्य सुनामी/डॉ॰ लालबहादुर रावल 150.00